ISSN: 0971-8478

अक्तूबर 2022

आजकल

1945 से निरंतर प्रकाशित

साहित्य और संस्कृति का मासिक



- शंभु गुप्त
- नवीन जोशी
- हरेराम समीप
- रोहिणी अग्रवाल
- अनिल प्रभा कुमार
- सुषमा मुनीन्द्र
- गरिमा श्रीवास्तव
- पं. विजयशंकर मिश्र
- पंकज चौधरी
- संजीव श्रीवास्तव
- गोविन्द उपाध्याय
- अजेय पाण्डेय
- कमलजीत चौधरी
- अर्चना लार्क
- भावना
- चन्द्र

Ajkal_October_2022.indd 57 27-09-2022 13:58:31

अब प्रिंट संस्करण और ई-बुक संस्करण उपलब्ध

आज़ादी का अमृत महोत्सव

भारत 2022



भारत के प्रांतों, केंद्रशासित प्रदेशों,
भारत सरकार के मंत्रालयों और विभागों तथा
नीतियों, कार्यक्रमों और उपलब्धियों की
आधिकारिक जानकारी देने वाला

वार्षिक संदर्भ ग्रंथ

मूल्यः प्रिंट संस्करण ₹ 330/- ई-बुक संस्करण ₹ 248/-

पुस्तकें खरीदने के लिए प्रकाशन विभाग की
वेबसाइट : www.publicationsdivision.nic.in और मोबाइल ऐप Digital DPD पर जाएं

ई-बुक एमेज़ॉन और गूगल प्ले पर भी उपलब्ध

देश भर में प्रकाशन विभाग के विक्रय केन्द्रों और
पुस्तक विक्रेताओं से भी खरीद सकते हैं

ऑर्डर के लिए संपर्क करें :
फोन : 011-24367260
ई-मेल : businesswng@gmail.com
हमारी पुस्तकें ऑनलाइन खरीदने के लिए
कृपया www.bharatkosh.gov.in पर जाएं।

प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय,
भारत सरकार
सूचना भवन, सी जी ओ कॉम्प्लेक्स,
लोधी रोड नई दिल्ली -110003
वेबसाइट : www.publicationsdivision.nic.in

सूचना भवन की पुस्तक दीर्घा में पधारें

@publicationsdivision @DPD India @dpd_India

इस अंक में

स्मरण

मरुधर मृदुल : चेतना और संवेदना से नाभिनालबद्ध : शंभु गुप्त 6

जन्मदिवस पर विशेष

अदम गोंडवी : समय से मुठभेड़ करता ग़ज़लकार : हरेराम समीप 9

लेख

हिन्दी की पहली यात्रा-वृत्तान्तकार : गरिमा श्रीवास्तव 13

प्रकाशचन्द्र गुप्त की हिन्दी आलोचना : अजेय पाण्डेय 20

प्रेम और सौहार्द्र की लौ जलाती कहानियाँ : कमलजीत चौधरी 42

साक्षात्कार

हम अपनी पारी खेल चुके (शेखर जोशी से बातचीत) : नवीन जोशी 38

श्रद्धांजलि

करोगे याद तो हर बात याद आएगी : संजीव श्रीवास्तव 46

कहानी

फ़ोर्ड वाले मामा : सुषमा मुनीन्द्र 24

तीसरी बेटी : गोविन्द उपाध्याय 35

कविताएँ/ग़ज़लें

दो कविताएँ : रोहिणी अग्रवाल 29

चार कविताएँ : अनिल प्रभा कुमार 30

चार कविताएँ : पंकज चौधरी 31

दो कविताएँ : चन्द्र 32

कविता : अर्चना लार्क 33

पाँच ग़ज़लें : भावना 34

इस माह-75 वर्ष पूर्व

सन्त गाँधी : आचार्य जे. बी. कृपलानी 48

संगीत आजकल

स्मृति समारोहों की धूम : पं. विजयशंकर मिश्र 50

पुस्तक परिचय

भारत की महान नारियाँ - कस्तूरबा गाँधी : ममता रानी 53

ISSN-0971-8478

पृष्ठ 56

आजकल स्थापित 1945

वर्ष : 78, अंक : 6
पूर्णांक : 932
अक्तूबर, 2022
आश्विन-कार्तिक 1944

प्रधान सम्पादक
राकेशरेणु

सम्पादक
फरहत परवीन

सम्पादन सहयोग
शुभ्रा सिंह

आवरण चित्र : **लीलाधर मंडलोई**
आवरण सज्जा : **बिन्दु वर्मा**
रेखाचित्र : **सिद्धेश्वर**

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार
सम्पादक
आजकल
प्रकाशन विभाग
कमरा नं. 601डी, सूचना भवन
सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड
नई दिल्ली-110003
दूरभाष : 011-24362915
ई.मेल : ajkalhindi@gmail.com
website : www.publicationsdivision.nic.in
फेसबुक www.facebook.com/publicationsdivision
ट्विटर : @DPD_India
इंस्टाग्राम : @dpd_india

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.के.सी. हृदयनाथ

सदस्यता शुल्क :
वार्षिक : 434 रुपये
दो वर्ष : 838 रुपये
तीन वर्ष : 1222 रुपये
(रजिस्टर्ड डाक से)

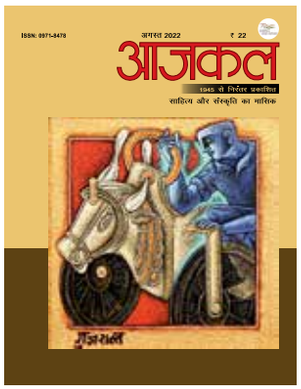
पत्रिका न मिलने की शिकायत अथवा **आजकल** की सदस्यता लेने या पुराने अंक मँगाने के लिए pdjucir@gmail.com पर ईमेल करें या सम्पर्क करें-
दूरभाष : 011-24367453

सदस्यता सम्बन्धी पत्राचार का पता
अभिषेक चतुर्वेदी, सम्पादक (प्रसार), पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कमरा नं. 779, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

हमारे विक्रय केन्द्र : **नई दिल्ली:** सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, दूरभाष : 011-24367260, **लखनऊ** : हॉल नं. 1, दूसरी मंजिल, केंद्रीय भवन, अलीगंज, दूरभाष : 0522-2225455, **कोलकाता** : 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, दूरभाष : 33-22488030, **पटना** : बिहार रा. सह. बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, दूरभाष : 0612-2683407, **मुम्बई** : 701 बी-विंग, सातवीं मंज़िल, केंद्रीय सदन बेलापुर, नवीं मुम्बई, दूरभाष : 9522-27570686, **बंगलुरू** : एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला दूरभाष : 080-25537244, **अहमदाबाद** : 4-सी, नेपच्यून टॉवर (एच.पी. पेट्रोल पंप के निकट), नेहरू ब्रिज कॉर्नर, आश्रम रोड, दूरभाष : 079-26588669, **हैदराबाद** : कमरा नं. 204, द्वितीय तल, सी.जी.ओ. टॉवर्स, कावादिगुडा-500080, **चेन्नई** : राजाजी भवन, एनी बेसैन्ट नगर, दूरभाष : 044-24917673, **तिरुअनंतपुरम** : गवर्मेंट प्रेस के निकट, दूरभाष : 041-2330650

Ajkal_October_2022.indd 3 27-09-2022 13:58:12

● पत्र



कालजयी साहित्यकारों का स्मरण

अगस्त, 2022 अंक त्रिलोचन और भीष्म साहनी की जयन्ती पर प्रकाशित लेखों के कारण बहुत महत्वपूर्ण बन गया है। इन लेखों के माध्यमों से दोनों कालजयी साहित्यकारों का स्मरण बहुत अच्छा लगा। आपका 'प्रसंगवश' त्रिलोचनजी पर बहुत सारगर्भित है। "तुलसी बाबा मैंने तुमसे सीखी भाषा" कहने वाले त्रिलोचन कविता के सिरमौर कवि ही नहीं थे, वे एक बड़े सरल और सौम्य व्यक्तित्व के धनी इंसान भी थे। उद्भूत् विद्वान और चलते-फिरते भाषा कोष के अलावा वे एक बेहद सादगी पसन्द व्यक्ति थे। अपने बारे में उन्होंने लिखा भी है, 'यही त्रिलोचन है जिसके तन पर गन्दे कपड़े हैं। कपड़े भी कैसे फटे-लटे हैं/ यह भी जीवन है, फ़ैशन से कटे-कटे हैं'।

कुछ साल पहले हिन्दी-उर्दू मजलिस सागर ने अपनी वार्षिक पत्रिका 'परिधि' का अंक 9 निकाला था, जिसे पढ़कर मैं बहुत प्रभावित हुआ था। उसी बहाने उनके छोटे बेटे अजितजी से जान-पहचान बढ़ी। कई बार उनके घर वैशाली गया। 9 दिसम्बर, 2007 को जब त्रिलोचनजी का निधन हुआ, मैं ग़ाज़ियाबाद में था। 13 दिसम्बर, 2007 को हिन्दी भवन, दिल्ली में शान्ति-पाठ का आयोजन था। उसमें बहुत कम लोग आए। जो लोग शामिल हुए उनमें केदारनाथ सिंह, मंगलेश डबराल, गोविन्द व्यास प्रमुख थे। त्रिलोचन के निधन के बाद उनकी महत्वपूर्ण कृति 'अमोला' का प्रकाशन हुआ। इसकी व्याख्या अजितजी ने कवि भष्टभुजा शुक्ल से कराई। शुक्लजी के मुख से मैंने यह व्याख्या सुनी। बहुत ही सुन्दर, शोधपूर्ण व्याख्या लगी।

इसी अंक में भीष्म साहनी के नाटक 'माधवी' पर अमरेन्द्र कुमार शर्मा का लेख बहुत विश्लेषणात्मक व शोधपरक है। एक नारी तीन-तीन महात्माओं के संतानोत्पत्ति व यौन सुख के लिए कैसे-कैसे समर्पित होती है और किन-किन शारीरिक और मानसिक पीड़ाओं से गुज़रती है', उसकी मार्मिक मीमांसा लेख में प्रस्तुत है। अन्य लेख, कविताएँ, कहानियाँ, समीक्षाएँ पठनीय हैं।

–आनन्द स्वरूप श्रीवास्तव,
जवाहर विहार, रायबरेली

सराहनीय प्रयास

अगस्त, 2022 अंक प्राप्त हुआ। इस अंक में 'सेलिब्रेशन' और 'एक गुम सी चोट' कहानियाँ अच्छी लगीं। यह पत्रिका साहित्य और संस्कृति से अच्छी तरह परिचय कराती है। लेखादि जनमानस को प्रभावित करते हैं। इसकी साज–सज्जा भी सुन्दर और प्रभावशाली होती है। लम्बे समय से लगातार प्रकाशित हो रही यह पत्रिका पाठकों को जागरूक करने में सराहनीय प्रयास कर रही है।

–मुकेश मोहन तिवारी,
ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

पठनीय और सराहनीय

अगस्त, 2022 अंक में प्रसिद्ध संगीतज्ञ पं. विजयशंकर मिश्र ने 'संगीत आजकल' के अंतर्गत जो संगीत विषयक लेख लिखा है, उसे पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। एतदर्थ उनको अभिनन्दन देकर 'आजकल' के प्रति अपनी प्रसन्नता प्रेषित करता हूँ। पिछले कई वर्षों में मिश्रजी ने जो लेख 'आजकल' पत्रिका में लिखे हैं उनमें से कुछ लेखों का अनुवाद मैंने गुजराती में भी किया है। इतना ही नहीं, दस-बारह लेखों का संग्रह भी अब मुद्रित करवाने जा रहा हूँ। 'आजकल' हमारे महाविद्यालय में आता है एवं उसके पाठक के रूप में प्रत्येक अंक में संगीत विषयक सभी लेख पढ़ने का मुझे सौभाग्य प्राप्त होता है। उनमें से कुछ लेखों का अनुवाद भी गुजराती में करता हूँ।

इस अंक में सितांशु यशश्चन्द्र के लेख 'एक सुदीर्घ और साहसिक शोध-यात्रा' ने भी काफ़ी प्रभावित किया। अंक की अन्य सभी सामग्री भी पठनीय और सराहनीय है।

–मधुसूदन म. व्यास,
मेडासा (गुजरात)

विश्लेषणपरक अंक

'आजकल' का अगस्त अंक प्राप्त हुआ। हर बार की तरह यह अंक भी संग्रहणीय एवं विश्लेषणात्मक है। सर्वप्रथम तो आवरण की बात करें। सुन्दर चयन एवं रंग संयोजन के लिए सम्पादक मंडल को साधुवाद ! यह सत्य है कि आवरण से ही पुस्तक का मूल्य नहीं आँका जाना चाहिए परन्तु यह भी सत्य है कि पुस्तक का प्रथम आकर्षण उसका आवरण ही होता है। अंक के कथ्य की बात करूँ तो त्रिलोचन पर सुरेश सलिल का स्मृति लेख भावनात्मक स्तर पर हलचल जगाता है। भीष्म साहनी के नाटक 'माधवी' का साहित्यिक पुनरावलोकन एक स्त्री की, अपने स्त्रीत्व को समझने, उसके प्रति जागरूक और अंत में उससे मुक्त हो जाने की यात्रा है। भले ही पृष्ठभूमि महाभारतयुगीन है किन्तु यह आज के परिप्रेक्ष्य में अधिक सटीक बैठती है। एक स्त्री जब किसी से भावनात्मक रूप से जुड़ती है तो स्वेच्छा से सब कुछ छोड़ देती है परन्तु फिर परिस्थितवश विवश होती है अपने पुनर्मूल्यांकन को और यही उसकी आत्मिक मुक्ति का रास्ता बनता है। उपन्यास अंश रोचक था एवं पूरा उपन्यास पढ़ने की तीव्र प्रेरणा जगा गया।

दिविक रमेश की कविताएँ एक अनोखे अंदाज़ में बिना कुछ कहे सब बोल देती हैं। इसी भाँति प्रकाश मनु एवं अन्य की भी कविताएँ अच्छी हैं। कहानी में 'सेलिब्रेशन' मारक प्रभाव डालती है। यह वर्तमान में समाज के पिछड़े एवं दिव्यांग की असुविधाओं पर अपनी सुविधाओं का संसार रचने वाले लोगों की मनोस्थिति को खोलकर रख देती है। प्रताप सहगल के नाटक 'बुल्लेशाह' पर मूल्यांकन बहुत ज्ञानपरक है। यह बुल्लेशाह के कवि और सन्त व्यक्तित्व की सुन्दरता एवं सहजता को प्रकट करता है। ऐसे ही विश्लेषणपरक गम्भीर आगामी अंकों हेतु प्रतीक्षारत!

–भद्रसेन सिंह, आईटीआई, बस्ती

Ajkal_October_2022.indd 4 27-09-2022 13:58:12

प्रसंगवश

वे दोनों अलग-अलग रास्तों पर चल रहे थे। चल क्या रहे थे, दौड़े चले आ रहे थे और रास्ते भी कैसे? दर्रे थे वे गहरे पहाड़ों के बीच से गुज़रते, उन्हें जोड़ते और अलग करते। उन्हें मिलना था परस्पर। बेताबी उनकी गति से समझी जा सकती थी। कहते हैं, भागा को चन्द्र से मिलना था और चन्द्र को भागा से। दोनों में एक-सी बेताबी थी, परस्पर एकमेक हो जाने, साथ रहने, बहने और आगे बढ़ने की। केलांग ग्लेशियर से आगे तांडी नामक स्थान पर वे परस्पर मिलती हैं, एक हो जाती हैं। संगम-स्थल से आगे नदी की तरह दोनों नाम भी तो जुड़ जाते हैं और यह संयुक्त धारा 'चन्द्रभागा' कहलाती है। नीचे की ओर बहते हुए यह कश्मीर में प्रवेश करती है जहाँ इसे चेनाब और फिर आगे पाकिस्तान में रावी के नाम से अभिहित किया जाता है। हड़प्पा सभ्यता इसी नदी के तट पर विकसित हुई, पली-बढ़ी और शेष हो गई।

बहुत पहले पढ़ी गई एक किताब की याद मिटाए न मिटी या कि वह कोई लेख था जिसका शीर्षक 'चन्द्रभागा के तट पर' था। शीर्षक तो याद रहा लेकिन आज बहुत कोशिश करने के बावजूद उसके लेखक का नाम याद नहीं आ रहा। इतना ज़रूर है कि तब से उस तट को देखने की एक मद्धिम-सी चाह मन में दबी हुई थी। उसी ने चन्द्रभागा के बारे में जानने, पढ़ने और इस संगम-तट पर पहुँचने की इच्छा जगाई। तभी यह जान पाया कि चन्द्रभागा नाम वाली भारत में एक नहीं, दो-दो नदियाँ हैं। एक हिमालय की गोद में अठखेलियाँ करती, पहले अलग-अलग फिर साथ-साथ अनन्य प्रेम को साकार करती, परस्पर एकमेक होती आगे बढ़ती, अनुराग का विरल प्रतीक बन जाने वाली और दूसरी महाराष्ट्र के अमरावती क्षेत्र में अनुराग बिखेरती। और तो और, उड़ीसा के पुरी में समुद्र तट का नाम भी चन्द्रभागा ही है। तो क्या वह लेखकार उड़ीसा का था या थी? शायद ऐसा ही हो लेकिन इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है? निश्चय ही वह लेखक भारत का था और अपने देश के बारे में लिख रहा था, मुझ जैसे अनेक लोगों के मन में चन्द्रभागा को देखने की उत्कंठा और उस अदेखे के प्रति प्रेम जगा रहा था। उसी के वशीभूत इन पंक्तियों का लेखक इस बार हिमाचल के सुदूर लाहुल स्पीति क्षेत्र में अवस्थित चन्द्रभागा संगम स्थल पर पहुँच गया जो हिमाचल के कवियों को आग-पानी देता आया है। इस पहुँचने को संभव बनाया युवा कवि गणेश गनी ने जो मूलत: लाहुल के पांगी घाटी के निवासी हैं। हिमाचल की युवा कविता में गणेश गनी तेज़ी से उभरा और अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराता नाम है। अपनी एक कविता में गनी लिखते हैं, 'चेहरे पर हवा ठहरती है तो एक मुस्कान तैरती है/ खारे पानी की पारदर्शी परत/ आँखों की चमक चौगुनी करती है/ ठीक चन्द्रभागा संगम पर कोई डेढ़ दो हाथ आगे से/ एक अँजुरी भर जल लाकर/पिलाने का एक अर्थ यह भी समझ आता है/ कि मित्रता कि प्यास जुग-जुग तक बुझे न बस।' मित्रता और प्रेम की प्यास बुझाने की कामना अँजुरी में भरे घूमती इस नदी के तट के साथ-साथ पले-बढ़े गणेश गनी की कविताओं का भी यह अनिवार्य गुण है - मित्रता और प्रेम। इसलिए यह नदी उनकी कविताओं में बार-बार लौटती है- कभी चन्द्रभागा के नाम से, कभी चेनाब का नाम धरे और कभी प्रेम का कई-कई बाना धारे।

लाहुल-स्पीति तक पहुँचना इससे पहले क्या कभी इतना आसान रहा? शायद नहीं। तमाम आशंकाओं के बावजूद इसे सरल बनाया नवनिर्मित अटल टनल ने। अटल टनल हिमालय के पूर्वी पीर पंजाल क्षेत्र में अवस्थित है। यह विशाल, ख़ूबसूरत किन्तु सर्दियों में दुर्गम बन जाने वाले रोहतांग ग्लेशियर के नीचे से होकर गुज़रती है। नौ किलोमीटर से भी अधिक लम्बी इस टनल के बन जाने से साल के लगभग छह महीने तक बन्द रहने वाला मनाली-लेह राजमार्ग अब सालभर खुला रहता है। इसने न केवल इन दुर्गम अँचलों में रहने वाले लोगों को हिमाचल प्रदेश तथा देश के अन्य इलाक़ों से जोड़ा है, उनका जीवन आसान बनाया है, उनके उत्पादों को बाहर ले जाने की सुगमता उपलब्ध कराई है, बल्कि हिमाचल का सौन्दर्य निहारने आने वाले पर्यटकों की यात्रा भी सुगम बनाई है। मनाली से रोहतांग ग्लेशियर होते हुए लाहुल तक पहुँचने में जहाँ पहले दिन का अधिकांश समय व्यतीत हो जाता था वहीं इस टनल से होकर अब यह यात्रा दो से ढाई घंटे में पूरी की जा सकती है। इसका निर्माण कार्य सन् 2008 में आरम्भ हुआ था जो 2020 में जाकर पूरा हुआ। दुर्गम पहाड़ और ग्लेशियर के नीचे से इस लम्बी सुरंग का निर्माण आसान न आ रहा होगा। सीमा सड़क संगठन की यह निश्चय ही एक शाहकार कृति है।

इस टनल को लेकर पर्यावरणविदों के साथ-साथ अनेक साहित्यकार भी चिन्तित थे। ख़ासतौर पर हिमाचल के पर्यावरण की चिन्ता करने वाले साहित्यकार। समकालीन हिन्दी कविता में हिमाचल के प्रमुख हस्ताक्षर अजेय कुमार हिमाचल के चित्रकार सुखदास की पेंटिंग्स देखने के बाद लिखी अपनी 'पहाड़ - चार छोटी-छोटी कविताएँ' की तीसरी कड़ी में लिखते हैं, 'ज़रा सोचो गुरुजी/ जब निकल आएगी/ इसकी छाती में एक छेद/ और घुस आएँगे इससे स्वर्ग में/ मच्छर/ साँप/ बंदर/ टूरिस्ट/ और ज़हरीली हवा/ और शहर की गन्दी नीयत/ और घटिया सोच, गुरु जी/ तब भी तुम इन्हें ऐसे ही बनाओगे/ अकड़ू और ख़ामोश ?' कवि की चिन्ता में हिमाचल की संस्कृति और पर्यावरण है। उसे बचाने की इच्छा है। भौतिक विकास कई मर्तबा इन दोनों को क्षति पहुँचाता है। ज़ाहिरा तौर पर कवि उनके बीच संतुलन क़ायम करना चाहता है।

हम चर्चा कर रहे थे चन्द्रभागा की जो केलांग ग्लेशियर से निकलती है। हिमालय में बसे इस ज़िले में चन्द्रभागा नदी का अनोखा प्रवाह है। चन्द्र नदी स्पीति घाटी की तरफ़ से आती है जबकि भागा नदी लाहौल घाटी से आती है जबकि दोनों ही नदियों का उद्गम स्थल बारालाचा दर्रा है। ख़ास बात है कि बारालाचा दर्रा के एक तरफ़ से चन्द्र नदी निकलती है जबकि दूसरे छोर से भागा निकलती है। चन्द्र नदी स्पीति घाटी को सिंचित करती है और भागा लाहुल घाटी को। चम्बा ज़िले में पहुँचकर यह चेनाब का नाम ले लेती है। चन्द्र नदी के उद्गम-स्थल को रंगोली घाटी के नाम से जाना जाता है जबकि भागा नदी के उद्गम-स्थल को पत्तन घाटी के रूप में। अभी इतना ही। अमरावती के चन्द्रभागा की चर्चा हम फिर करेंगे। दूसरी ओर हिमाचल के साहित्य की भी।

Ajkal_October_2022.indd 5 27-09-2022 13:58:13

● स्मरण



मरुधर मृदुल
चेतना और संवेदनशीलता से नाभिनालबद्ध

शंभु गुप्त

'आस-पास' मरुधर मृदुल की कविताओं का प्रतिनिधि संग्रह है; न केवल प्रतिनिधि, बल्कि, समेकित भी। अपनी रचनात्मक ज़िन्दगी के बेहतरीन लगभग बीस सालों में लिखी उनकी कविताएँ यहाँ हैं। दरअसल यही कारण है कि इस संग्रह का कलेवर आशातीत रूप से बड़ा और विरल है।

बीस सालों का कवि-श्रम जब एकत्र रूप में सामने हो तो तय है कि कवि-व्यक्तित्व की समग्रता वहाँ आप-से-आप होगी और जब समग्रता होगी तो यह भी तय है कि वहाँ विषय एवं शैली-शिल्पगत विविधता भी स्वभावत: होगी। केदारनाथ सिंह ने इन कविताओं की भूमिका लिखते हुए यह ठीक लक्ष्य किया है, "मरुधर मृदुल की कविताओं से गुज़रते हुए जिस बात ने मेरा ध्यान सबसे पहले आकृष्ट किया, उसे नाम देना चाहूँ तो बस एक ही नाम दे सकता हूँ– एक सीधा-सा जाना-पहचाना नाम 'विविधता'।" (आरम्भिक, 'आस-पास', पृ-12)।

निश्चय ही विविधता आज एक दुर्लभ तत्त्व है। ज़्यादातर कवि एक सीमा के बाद खुद को दोहराने लगते हैं और अपनी ही बनाई काव्य-रूढ़ियों में क़ैद हो रहते हैं। ओढ़ी हुई गम्भीरता और अत्यधिक सचेतता के निरन्तर स्वभाव के तहत ही ऐसा होता है। कवि-कर्म के नित-नूतन और रमणीय बने रहने की आलोचकीय अपेक्षा के लिए ज़रूरी है कि कवि थोड़ा अबोध हो। शिशु की तरह वह अंदर-बाहर से एक हो। शीशे की तरह साफ़ और सम्वेदनशील हो। कुछ ऐसा कि हाथ लगे तो मैला हो जाने की अनिन्द्य अपरूपता साफ़ उभर आए ! लेकिन इस क्रम में ऐसा भी न हो कि वह एकदम छुई-मुई या असूर्यम्पश्या स्वप्न-सुन्दरी ही हो जाए ! कुल मिलाकर यह कि ऐसा लगे कि वह अपने मौजूदा समाज, समय और परिवेश का एक सहज और जीवन्त हिस्सा है। उसमें घृणा को घृणा और प्यार को प्यार कह सकने और अपनाने का आदिमतम मानवीय स्वभाव दिनचर्या में शामिल हो। निश्चय ही ऐसा कवि सपाटबयानी और सरलीकरण की खाई को पार करने में बहुत अधिक समय लेगा और कई बार हो सकता है कि वह वहीं फँसा पड़ा रह जाए, लेकिन जब वह वहाँ से बाहर निकलेगा तो तपा हुआ सोना बनकर निकलेगा, यह भी लगभग तय है। मरुधर मृदुल हालाँकि पूरी तरह इस कोठरी के मोह से नहीं उबर पाए हैं, लेकिन इसके ज़ंग लगे या घुन खाए किवाड़ों को उन्होंने खोल लिया है और एक संश्लिष्ट और समग्र विचार-दर्शन या कि जीवन-दृष्टि की उज्ज्वलता को आत्मसात् करने की प्रक्रिया में आ गए हैं।

'गीति' मरुधर मृदुल का मूलभूत काव्य-संस्कार रहा है। मृदुल वस्तुत: उस कवि-पीढ़ी से ताल्लुक़ रखते हैं, जो आज़ादी के आस-पास जवान हुई थी और यह निश्चित हो जाने पर कि अब हम स्वतन्त्र हैं, कुहासा और अँधेरा छँट गया है, चिन्ताएँ मिटी हैं और एक खुली-खुली अपरिमित और स्वत्वाधिकारपूर्ण दुनिया हमारे सामने है और अब जीवन में सम्भावनाएँ-ही-सम्भावनाएँ हमारे लिए पलक-पाँवड़े बिछाए प्रतीक्षातुर हैं, अपार आनन्दोल्लास और मोहावेग में ऊभ-चूभ होने लगी थी। नीरज और नरेन्द्र शर्मा जैसे गीतकारों की यह पीढ़ी आगे चलकर एक स्पष्ट दृष्टिहीनता और व्यक्तिगत आनन्दवाद की अंतहीन गिरफ़्त में आ गई। मृदुल के यहाँ यह गिरफ़्त ढीली पड़ी और वे एक बिल्कुल ही भिन्न काव्याभ्यास में अपने को डाल और ढाल पाए : बस यही बात हमें उनके प्रति आश्वस्त करती है और उनकी रचनाओं को समकालीन विचार के योग्य बनाती है। हालाँकि गीतिपरकता अब भी कभी-कभी उनकी चिन्ताकुलता को जाने-अनजाने टँगड़ी मार ही जाती है लेकिन बड़े-बूढ़ों की कुछ अपरिहार्य आदतों की तरह यह अब मात्र एक रूढ़ि है जिसे झेला या नज़रन्दाज़ किया जा सकता है। सत्य यह भी है कि यह इस कवि की सहजता या अपरूपता की सर्वोपरि कसौटी भी है। उनकी इन कविताओं में से गीति-तत्त्व (लिरिसिज़्म) को निकाल दें तो इनकी पठनीयता और अधिगमता बुरी तरह संकट में पड़ जाएगी।

देखा दरअसल यह जाना चाहिए कि कविता के एक अवयव के रूप में गीति-तत्त्व समकालीन चिन्ता और काव्याभिप्रेत को समझने-समझाने में कहाँ, कितना और कैसे सहयोग दे रहा है। जिन कवियों का काम गीति के बिना चल नहीं पाता और जो कविता को इसी रूप में सोचते और लिखते हैं या जिनकी रचना-प्रक्रिया का प्रस्थान-बिन्दु यही है, उन कवियों के सन्दर्भ में विशेषत: इस मुद्दे पर बात करना ज़रूरी है। कई बार इस प्रसंग में कविता का विवेचन कुछ इस तरह किया जाता है कि लगने लगता है कि प्रगीतात्मकता न हो तो कविता कविता ही नहीं कहला सकती या यह कि प्रगीत ही वह तत्त्व है जो किसी कविता को लोकपरक बनाता है या यह कि जिस कविता में लय न हो वह आज जनता के किसी काम की नहीं, इत्यादि। मेरा विचार है कि यह विवेचना-दृष्टि आलोचना का वामपंथी भावावाद है और एक प्रकार की मोहाविष्टता है। यह तर्क-संगत नहीं है। इसे 'अंधलोकवाद' भी अनेक

सम्पर्क : मो. 8600552663, ई-मेल : shambhugupt@gmail.com

Ajkal_October_2022.indd 6 27-09-2022 13:58:13

लोगों ने कहा है। देखना दरअसल यह चाहिए कि प्रगीत से कविता कहाँ, कितनी और कैसे लोकोन्मुख हो रही है। कहीं ऐसा तो नहीं कि प्रगीत के मार्फ़त मंचीय सीमाओं में क़ैद हो जाना उसने अपनी नियति मान लिया है तथा काव्य-वस्तु और शिल्प के उसी प्रारूप को आत्मसात् कर लिया हो। मरुधर मृदुल की कविताएँ इस ख़तरे से स्वयं को बचा ले गई हैं तो इसका कारण यही है कि अपने एकदम मौजूदा समय और नितान्त आस-पास पर केन्द्रित होते हुए भी वे चीज़ों को फ़ौरी तौर पर नहीं लेते। उनकी तात्कालिकता हालाँकि अपनी पूरी ताज़गी और सद्यता के साथ वहाँ मौजूद रहती है लेकिन कवि उनकी आख्या ऐतिहासिक भौतिकवादिता के साथ ही करता है। उसकी विचार-दृष्टि गतिशील मानव-मूल्यों से संचालित है, अत: वह किसी तात्कालिक घटना पर मात्र 'रि-एक्ट' नहीं करता बल्कि अंतर्दृष्टिपूर्ण हस्तक्षेप करता है। न केवल कविता में बल्कि गद्य में भी यही करता है। मसलन सम्प्रदायवाद के समकालीन प्रारूप और प्रवृत्तियों पर अपने 'धर्मनिरपेक्षता : सत्य एवं असत्य का झीना पर्दा' शीर्षक लेख में कवि लिखता है– "धर्मान्धता का संस्कार व चरित्र एक ही होता है चाहे वह उस धर्म का हो या इस धर्म का।" ('एक और अंतरीप' सितम्बर-1993, पृ-36) तो अपनी 'आजकल' शीर्षक कविता में लिखता है– 'सच सोच नहीं/ सच है एक अंधा उन्माद/ सिमट गया है आदमी/ भाल के तिलक/ व काले निशान के चक्रव्यूह में', ('आस-पास', प्रथम संस्करण, 1995, पृ-316) एक अन्य कविता 'सच का डर' में लिखता है– "तुम ही हो/ बदलकर भेस/ भाषा, परिवेश/ सब कहीं देते हो नर बलि।/ बन बैठे हो/ मुल्ला और सन्त/ बाहुबली।/ बिना कुछ किए/ तुमने उलट दिए/ ज्ञान के दीये।' (वही, पृष्ठ 348-49)। इसी तरह अपने लेख में वह लिखता है–"ठीक यही आज हो रहा है– तथाकथित प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में। हर सत्ताधीश धर्म का तुष्टिकरण करता है। जिसको जो धर्म रास आ जाए, उसी की बाँह पकड़ कर।... राज्य भले ही धर्मनिरपेक्ष हो, सत्ताधीश नहीं होता। वह तो धर्म सापेक्ष होता है।... धर्म को शिखंडी बनाकर सत्ता का खेल राजनीति सदा से खेलती आई है –चाहे वह भारत में हो या कहीं और।" ('एक और अंतरीप,' वही, पृ-3)।

फिर आगे अपनी 'नए राम' (1992) शीर्षक कविता में कवि कहता है– "तुष्टिकरण के झूठ से/ तुष्टिकरण करती/ तुष्ट होती है सत्ता की प्यास" ('आस-पास' पृ-276)। धर्माधारित तुष्टिकरण मात्र किसी धार्मिक समुदाय का तुष्टिकरण नहीं है बल्कि किसी अन्य पर अन्याय व उसे अँधेरे में रखते हुए अपनी सत्ता की सम्भावनाएँ तलाशना भी है। तुष्टिकरण के मूल में निहित है– अन्याय की पुष्टि। मरुधर मृदुल ने अपने लेख में लिखा –"तुष्टिकरण यह है कि आप अपने राजनैतिक अथवा व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए अन्याय का समर्थन करते हैं या अन्याय का प्रतिकार नहीं करते।" ('एक और अंतरीप', पृ-वही)। मृदुल अपनी 'अस्मिता' शीर्षक कविता में भी लगभग इसी शब्दावली का प्रयोग करते देखे जाते हैं– 'अजब है अस्मिता/ चुप रहती है जब मुँह खोलना चाहिए/ बोलती है जब न बोलना चाहिए।/ जब ललचाए सत्ता/ तब अलबत्ता/ सहसा जाग उठती है/ मुँह से घृणा की आग उठती है/ उठती है सौगन्धी की पताका/ उठाई जाती है शलाखा/ तुष्टिकरण की।/ तुष्टिकरण को देता हुआ गाली/ तुष्टि करेगा/ अन्याय की पुष्टि करेगा।" ('आस-पास,' पृ-280)। देखने की बात यह है कि ये कविताएँ और यह लेख लगभग एक ही समय लिखे गए हैं। इससे एक तथ्य स्पष्ट होता है कि अंतर्दृष्टि मज़बूत हो तो न केवल चिन्तन की दिशा तर्कसंगत होती है बल्कि भिन्न रचना-विधाओं में भी उसका रूप एक जैसा होता है।

अंतर्दृष्टि की इस मज़बूती और भिन्न विधाओं में भी एक जैसी वैचारिकता का एक और वस्तु-सन्दर्भ सोवियत संघ का विघटन है। सोवियत संघ के विघटन से भारत जैसे विकासशील और संघर्षरत देशों के लेखकों/बुद्धिजीवियों ने एक ऐसा हतोत्साह महसूस किया, मानो अरसे से सजाया गया सपनों का एक शानदार महल यकायक भरभरा गया हो ! मरुधर मृदुल अपनी कविताओं में इसे तफ़सील से लेते हैं तो दुनियाभर की अपनी यात्रा के इतिवृत्तों के संकलन 'यात्रा के बहाने' के लेखों में बीच-बीच में इसका उल्लेख, विश्लेषण-आकलन करने से नहीं चूकते। एक मोहभंग-मूलक पश्चाताप इस पूरे प्रकरण में आद्यान्त दिखाई देता है। इस पश्चाताप के कई सन्दर्भ और आयाम हैं। इसका एक आयाम तो यह है कि सोवियत व्यवस्था को हमने अपने समाजवादी विचार-दर्शन और उसके तहत स्थापित होने वाली एक राज्य व्यवस्था का आदर्श रूप मान लिया। इसका दूसरा आयाम यह है कि एसा मानते हुए हम लगभग एक वामपंथी भाववाद की गिरफ़्त में इस क़दर फँसते चले गए कि हमें मार्क्सवाद का यह बहुत प्राथमिक सूत्र भी याद रह पाया कि समाजवाद का कोई भी रूप या प्रारूप अन्तिम नहीं है। देश-काल के अनुसार इसके अलग-अलग ढाँचे भी हो सकते हैं, होने चाहिए। हम अपने देश-काल के हिसाब से अपनी समाजवादी व्यवस्था का एक मौलिक ख़ाका तैयार करें। हमने बिल्कुल एक मोहान्ध व्यक्ति की तरह वामपंथ को आयातित किया और जब वहाँ यह चरमरा गया तो यहाँ हमारे लिए चारों ख़ाने चित्त होने के अलावा और कोई नियति थी ही नहीं ! सोवियत व्यवस्था के बिखराव ने जैसे हमें पहली बार यह अहसास कराया कि यह मोहान्धता ग़लत थी और हमें मार्क्स के उस कथन को याद रखना चाहिए था कि किसी भी समाजवादी व्यवस्था की हू-ब-हू नक़ल नहीं की जा सकती। हमें अपना रास्ता, अपना समाजवाद ख़ुद तय करना चाहिए था ! यह एक आत्मालोचन था जो इस पूरे घटनाचक्र ने हमें दिया। इस आत्मालोचन का ही नतीजा है कि हम इस सकारात्मक निष्कर्ष पर पहुँचे कि सोवियत संघ का पतन एक व्यवस्था का पतन था, विचार का पतन नहीं था, जैसाकि सारी दुनिया में पूँजीवादी/साम्राज्यवादी एजेंसियों ने इसे प्रचारित किया था। इस का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि हम यह सोचने की स्थिति में आ गए कि सम्भावनाएँ अभी पूरी तरह ख़त्म नहीं हुई हैं। संघर्ष-यात्रा अभी जारी है। यह एक ठोकर थी जो हमें लगी। यह रास्ते का अंत नहीं था। मरुधर मृदुल 'कारवाँ' शीर्षक कविता में लिखते हैं, 'हवा में कई/ लक्ष्य हाथ बढ़े/ गिरती मशालें उठाईं/ बुझती मशालें जलाईं/ कारवाँ चलता रहेगा/ हिमालय का बर्फ़/ हमेशा गलता रहेगा।/ यह वो अँधेरा नहीं/ जो बुझ जाए/ रौशनी का दरिया है/ लगातार बहेगा।' (वही, पृ-299)। उल्लेखनीय है कि इस कविता की शुरुआती पंक्तियाँ ये हैं, 'मशाल लेकर/ हम बहुत लोग चले थे/ मशाल बुझी तो/ हम खुद ही जले थे।' (वही)। बुझी मशाल के फिर जल उठने और यात्रा की निरन्तरता का यह अहसास बल्कि एक तरह की शुभाशंषा सन् 1990

Ajkal_October_2022.indd 7 27-09-2022 13:58:13

की बात है। इससे ठीक दस साल पहले कवि जिस तनाव में था, उसे भी उसने तत्काल दर्ज किया था। उस समय घाव नया था सो वह इससे आगे नहीं जा सका, 'अब सोच के पैमाने/ सब बेकार हुए/ जिन विश्वासों से/ इतिहास बदलना था/ कुछ दौर हुआ तारी/ बे-आधार हुए।' (वही, पृ-131)।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सन् 80 की इस 'सपने क्षार हुए' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ 'यात्रा के बहाने' में भी उद्धृत हैं। "समाजवादी जीवन-दर्शन रूस का 'पर्यायवाची' नहीं है। यह अगर हम पहले समझ लेते तो शायद यह दंश न होता। जिसकी पीड़ा ने हमें किंकर्त्तव्यविमूढ़ कर दिया है।" (वही)। इस क्रम में समाजवादी विचारधारा की अपराजेयता और एक व्यवस्था के रूप में गत सत्तर वर्षों में इसकी राष्ट्रीय उपलब्धियों का लेखा-जोखा बड़े आदर के साथ अंकित है। कविताओं में और यात्रा-वृत्तों में इस प्रसंग का बार-बार आना और निरन्तर बने रहना, कवि मरुधर मृदुल की इसके प्रति गहरी प्रतिबद्धता बल्कि एकमेकता का प्रमाण है। मरुधर मृदुल एक सचेत व चिन्तनशील कवि की छवि निर्मित कर लेते हैं।

"मरुधर मृदुल प्रकटत: किसी आंदोलन से कथित रूप से जुड़े प्रतीत नहीं होते किन्तु समकालीन परिदृश्य और अपने आस-पास की भीषणताओं से जिस तरह से प्रश्नाकुल रूप में वे जुड़े हैं, उससे वे एक आंदोलित और चिन्तित मन की प्रतीति स्पष्टत: पाठक को कराते हैं।"

हिन्दी की प्रगीत-संरचना आत्मपरकता के लिए विख्यात रही है। इस आत्मपरकता ने अनेक बार सृजनात्मकता की हदें भी पार की हैं और यह व्यक्तिगत आस्फलन का पर्याय भी बनी है। यही कारण है कि गीत हिन्दी में यथार्थवाद का बोझ उठाने में ज़्यादातर नाकामयाब रहा और यह हमेशा एक ख़ास तरह के भाववाद में फँसा रहा। मृदुल का कवि-स्वभाव इससे भिन्न नहीं है किन्तु वे अपने काव्य-प्रयास में इस रूढ़ि को तोड़ते भी हैं। व्यक्तिगतता या कि अकेलापन प्राय: हर कवि की निजी पूँजी होती है। अंतर सिर्फ़ यहाँ आता है कि वह इसका उपयोग कैसे-क्या करता है। कुछ लोग इसे व्यक्तिवाद या कि व्यक्तिगत अहं पर निसार कर देते हैं और अपने से शुरू करके अपनी काव्य-यात्रा को अपने पर ही समाप्त कर देते हैं। यही आत्मालाप या आत्मग्रस्तता की स्थिति है। इस आत्मालाप की अपनी ही सीमाएँ होती हैं। यह बिल्कुल वैसी स्थिति है, जैसे कोई बार-बार अपने पर ही रोए और हँसे ! अपने से अपने ही बारे में बतियाए ! यह अपना-आप इतना सीमित और ऐकान्तिक होता है कि इसमें बाहर की हवा, पानी, धूप, कुछ भी प्रवेश की अनुमति नहीं प्राप्त कर पाता। धूल-धक्कड़, आँधी-तूफ़ान की तो फिर मजाल ही क्या कि इधर आने की हिमाक़त भी करे ! मरुधर मृदुल में ऐकान्तिकता है लेकिन प्राइवेट लिमिटेड नहीं है। अकेलेपन की दो दिशाएँ होती हैं। इनमें एक है आत्मनिर्वासन और दूसरी है आत्मनिरीक्षण या आत्म-संशोधन। आत्मनिर्वासन एक त्रासद विडम्बना है जिसमें व्यक्ति स्वयं को स्वयं से विच्छिन्न कर किन्हीं ग़ैर-प्रासंगिक और ग़ैर-ज़रूरी मामलों में जान-बूझकर उलझाते हुए वर्तमान से पिण्ड छुड़ाने की चेष्टा करता है लेकिन इस चेष्टा में वह अपनी कुंठाओं, आग्रहों और अंतर्निषेधों में फँसता चला जाता है। आत्मालाप आत्मग्रस्तता यही स्थिति है किन्तु आत्मनिरीक्षण और आत्मसंशोधन का आधार सामूहिकतावादी जीवन-दृष्टि होती है जिसमें व्यक्ति समाज के कोण से अपना ख़ुद का आकलन/अंकेक्षण करता रहता है। मरुधर मृदुल का एकान्तवाद इसी दूसरी कोटि का है। निचाट अकेलापन इस कवि को काम्य नहीं है। उसे कोई-न-कोई हलचल हर समय चाहिए। मृदुल 1980 के अपने एक गीत 'मन' में लिखते हैं–

'कोई तो तूफ़ान उकेरे
गुपचुप आकर हलचल घेरे
पलकों में आ जाए सावन
बिना लिखा काग़ज़-सा मन।'

('आस-पास', पृ-137)

बिना लिखे काग़ज़ जैसे इस हलचलकामी मन की अगली स्थिति यह है : 'बन्द खिड़की खोल कर/ शोर को/ मैंने अपने घर के/ भीतर बुला लिया/ बाहर अब हो गया/ भीतर/ अब बाहर अधिक है/ भीतर कम है/ मेरा घर/ अब मुझ में/ कहाँ इतना दम है/ कि भीतर को बाहर कर दूँ !' (वही, पृ-114)। इससे आगे की स्थितियाँ अब एकदम साफ़ हैं। स्थायी रूप से भीतर आया हुआ यह बाहर कवि को अपने स्व और बाह्य परिदृश्य के बीच के एक नए अंतस्च संगठन के समक्ष उपस्थित करेगा जिसकी एक पहचान यह भी होगी कि वह पूरी तरह-ऐकान्तिक रूप से न तो अंदर का रहेगा, न बाहर का। यह स्वरूपान्तरण कुछ इस तरह का होगा कि इन दोनों की ही अपनी-अपनी इयत्ताएँ समाप्त हो जाएँगी। इन दोनों से परे एक ऐसी तीसरी एकदम नई स्थिति में कवि पहुँच जाएगा जहाँ वह इन दोनों के प्रति नितान्त अंतर्निषेध-मुक्त हो उठेगा। यह एक ऐसी अंतर्क्रिया है जो कवि में कभी ठहराव या दुहराव नहीं आने देती। इसी अंतर्क्रिया के तहत कवि में गतिशीलता पैदा होती है जो आगे चलकर प्रगतिशीलता से उसे सम्बद्ध करती है। मरुधर मृदुल में हम जो सहज प्रगतिशीलता-संस्कार की तरह, स्थित पाते हैं, उसकी प्रक्रिया और आधार यही है।

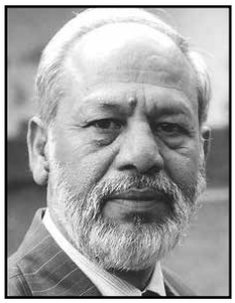
मरुधर मृदुल प्रकटत: किसी आंदोलन से कथित रूप से जुड़े प्रतीत नहीं होते किन्तु समकालीन परिदृश्य और अपने आस-पास की भीषणताओं से जिस तरह से प्रश्नाकुलरूप में वे जुड़े हैं, उससे वे एक आंदोलित और चिन्तित मन की प्रतीति स्पष्टत: पाठक को कराते हैं। मरुधर मृदुल जिस सीधे और सरल तरीक़े से लगभग अभिधात्मक रूप में चीज़ों को उठाते हैं वह सामान्य भारतीय जन-समूह की वर्तमान मन:स्थिति के पर्याप्त अनुकूल है। चिन्ता की बात तो यह होनी चाहिए कि कविता अपने समय के सवालों को जनोन्मुख तरीक़े से उठा रही है या नहीं। हाँ, जनोन्मुखता के स्वरूप और प्रविधि पर बहस की जा सकती है।

मरुधर मृदुल अपने अधिवक्ताई करिश्मे का इस्तेमाल अपनी कविताओं में भी करते नज़र आते हैं और कभी सीधे तो कभी उल्टे समय की नाक को पकड़ते चलते हैं। एक प्रौढ़ कवि का यह कोई प्रगीतात्मक वन-मैन शो नहीं, बल्कि एक ऐसा संश्लिष्ट एकाभिनय है जिसमें एक ही व्यक्ति डबल, ट्रिपल और उससे भी अधिक रोल

पृष्ठ 19 पर जारी...

Ajkal_October_2022.indd 8 27-09-2022 13:58:13

● **जन्मदिवस पर विशेष**



अदम गोंडवी
समय से मुठभेड़ करता ग़ज़लकार

हरेराम समीप

ठाकुर रामनाथ सिंह, उप नाम 'अदम गोंडवी' हिन्दी के ऐसे अदम्य कवि थे, जिन्होंने सत्ता की परवाह किए बिना जनता की पीड़ा और उस पर हो रहे अन्याय और शोषण पर आधारित व्यवस्था के ख़िलाफ़ अपनी बेबाक रचनाओं से निरन्तर प्रहार किया था। कबीर की तरह अदम्य आक्रोश में दो-टूक बात कहने के उनके अंदाज़ ने उन्हें जनता की आवाज़ का कवि बना दिया था। अदम ने हमेशा अवाम का पक्ष लिया और आजीवन उसी के साथ खड़े रहे। अंत तक न वे बदले, न उनकी कविता बदली और न ही उनका पक्ष बदला। उनकी ग़ज़ल की व्यापक स्वीकार्यता का मुख्य कारण था कि इन ग़ज़लों में जनमानस के जीवन की व्यापक अभिव्यक्ति हुई है।



हिन्दी ग़ज़ल में दुष्यन्त के बाद दूसरा सबसे बड़ा नाम अदम गोंडवी का है। सामाजिक व राजनैतिक प्रतिरोध की जो ग़ज़ल-परम्परा दुष्यन्त कुमार ने शुरू की थी, उसे अदम ने एक ऐसे सोपान पर ले जाकर स्थापित किया, जहाँ से जनधर्मी ग़ज़ल की एक नई और समृद्ध परम्परा विकसित होती चली गई, जिसे आज अनेक ग़ज़लकार अपनी पूरी रचनात्मकता से नए आयाम दे रहे हैं, जिसे हम 'अदम गोंडवी की जनधर्मी परम्परा' भी कह सकते हैं।

'अदम गोंडवी' का जन्म 22 अक्तूबर, 1947 को ग्राम परसपुर, ज़िला गोंडा, उत्तर प्रदेश में एक निम्न-मध्यमवर्गीय किसान परिवार में हुआ था। यद्यपि पारिवारिक स्थितियों के कारण वे केवल पाँचवीं कक्षा तक ही पढ़ पाए और किसानी करने लगे थे, लेकिन उनकी विरल काव्य-प्रतिभा, अद्‌भुत स्वाध्याय और गहरी जनपक्षीय प्रतिबद्धता ने उन्हें इस दायरे से बाहर निकलने में बड़ी सहायता की। उन्होंने इतना गहन अध्ययन किया था कि भारतीय समाज और राजनीति के विरोधाभासों की जितनी तथ्यपूर्ण जानकारी अदम की ग़ज़लों में है, उतनी किसी ग़ज़लकार में दिखाई नहीं देती। बहराइच ज़िले के कैसरगंज क़स्बे के महंत अरबी, फ़ारसी और उर्दू के विद्वान रघुनाथ दास के सान्निध्य में अदम की ग़ज़ल-रचना की शुरुआत हुई और उन्होंने ही 'अदम' नाम उन्हें दिया। 'अदम' अर्थात् 'वंचित'। इन्हीं दिनों वे हिन्दी के अनेक प्रतिष्ठित कवियों के सान्निध्य में रहे, जिससे उनकी काव्य-दृष्टि अत्यंत व्यापक हुई।

इस व्यापक काव्य-दृष्टि को अदम गोंडवी ने अपने ग्रामीण जीवन की समस्याओं पर केन्द्रित किया। सन् 1975 में लगे आपातकाल ने अदम को रचना-कर्म में उतरने की प्रेरणा दी। उन्होंने देश की ग़रीबी और बदहाली की सच्ची और नंगी तस्वीर देखी थी। गाँवों में उन्होंने सदियों से जड़ें जमाए बैठी सामंतवादी ताक़तों, भ्रष्टाचारियों, कालाबाज़ारियों और धार्मिक पाखंडियों का आतंक देखा और जब स्वयं उनका अत्याचार भोगा तो वे इसके ख़िलाफ़ डटकर विरोध करने उतर पड़े। उन्होंने अपना यह विरोध ग़ज़लों और कविताओं के माध्यम से जनता के बीच मंचों पर उजागर किया लेकिन वे आज के कवियों से इस अर्थ में बिलकुल भिन्न थे कि वे सत्ता और पाखंड को गाली देने और जनता के पक्ष में बोलने से कहीं नहीं चूकते थे। किसानी वेश में अदम हिन्दी कविता में एक 'विद्रोही किसान चेहरा' बन गए थे।

उनका पहला ग़ज़ल-संग्रह सन् 1988 में 'धरती की सतह पर' नाम से तथा दूसरा ग़ज़ल संग्रह सन् 2010 में 'समय से मुठभेड़' नाम से वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ, जिसमें पिछले संग्रह की अधिकांश ग़ज़लों को भी शामिल कर दिया गया है। इसमें सौ ग़ज़लें हैं।

'समय से मुठभेड़' की भूमिका में उर्दू के आग्नेय शायर कैफ़ भोपाली ने लिखा है, "दुष्यन्त ने अपनी ग़ज़लों से शायरी की जिस नई 'राजनीति' की शुरुआत की थी, अदम ने उसे उस मुक़ाम तक पहुँचाने की कोशिश की है, जहाँ से एक–एक चीज़ बग़ैर किसी धुँधलके के पहचानी जा सके। इस 'राजनीति' का एक और मक़सद राष्ट्रीय आंदोलन में घायल और लहुलूहान कर डाले गए उन मूल्यों की याद

सम्पर्क : *मो. 9871691313, ई-मेल : hareramsameep1951@gmail.com*

Ajkal_October_2022.indd 9 27-09-2022 13:58:14

को क़ायम रखने और बचाने का भी है जिनके बचने पर ही यह देश और इसकी आज़ादियाँ बच सकेंगी।"

एक साक्षात्कार में स्वयं अदम ने कहा है, "हाँ, यह ज़रूर है कि जो चिन्तन दुष्यन्त कुमार ने धुँधला छोड़ दिया था, उसे मैंने साफ़ करने का प्रयास किया। मुझे यह कहने में कोई गुरेज़ नहीं है कि दुष्यन्त कुमार के यहाँ कलात्मकता है और मेरे पास साफ़गोई। मैंने जो कुछ देखा, अनुभव किया उसे सीधे-सीधे कह दिया, सजाया-सँवारा नहीं। मैंने साफ़गोई से ही सब कुछ बयाँ किया है।"

अदम गोंडवी ने बड़े ही निकट से भारतीय जनता, विशेष रूप से ग्रामीण जनता का शोषण देखा था। उसके साथ होने वाले तमाम भेदभाव, शोषण, अत्याचार, भ्रष्टाचार और अन्याय को देखा-समझा था। हमारा लोकतन्त्र किस तरह के राजनैतिक दुष्चक्र में फँसकर जन-विरोधी हो गया है, इस पर बड़ी बारीकी से उन्होंने अपनी ग़ज़लों में विचार किया है। अपने समय से सार्थक मुठभेड़ करने के कारण अदम की ग़ज़लें समय और समाज का सार्थक प्रतिबिम्ब बन गई हैं। उन्होंने केवल राजनीति और समाज-व्यवस्था की चीर-फाड़ ही नहीं की है, अपितु धर्म और संस्कृति के विद्रूप पक्ष को भी उभारा है। उसमें हमारे आस-पास का चिर-परिचित यथार्थ अपने विकृत रूप के साथ उपस्थित है। चूँकि अदम एक चिन्तक और विद्रोही शायर हैं, अत: इनकी शायरी ग़ज़ल के परम्परागत रूप का विधिवत अतिक्रमण करती है। इसमें वैयक्तिकता के स्थान पर सर्वहारा और उपेक्षित मनुष्यता के दुख-दर्द के ख़िलाफ़ प्रतिरोध है।

'समय से मुठभेड़' संग्रह की ग़ज़लों से गुज़रते हुए हम अदम गोंडवी की जेहनियत, बेचैनी, काव्य-दृष्टि तथा काव्य-सरोकारों से आसानी से परिचित होते जाते हैं। अपनी ग़ज़लों के स्वरूप पर वे बतलाते हैं–

'एशियाई हुस्न की तस्वीर है मेरी ग़ज़ल
मशरिकी फ़न में नई तामीर है मेरी ग़ज़ल'।

उनकी ग़ज़ल 'भूख के अहसास को शेरो–सुख़न तक ले चलो' बुनियादी परिवर्तन का आह्वान करती है। मतले के माध्यम से अदम ग़ज़ल को परम्परागत सौन्दर्य और प्रेम की अभिव्यक्ति से यथार्थ-जीवन की अभिव्यक्ति की ओर मोड़ने या जिसे अदम 'भूख के अहसास' की ओर मोड़ने की सलाह देते है। उनका ग़ज़ल को 'मुफ़लिसों के अंजुमन' तक ले जाने का यह प्रस्ताव वास्तव में ग़ज़ल को जीवन के और क़रीब लाने का ऐतिहासिक प्रस्ताव था–

'भूख के अहसास को शेरो–सुख़न तक ले चलो
या अदब को मुफ़लिसों की अंजुमन तक ले चलो'।

उनका कहना था कि वर्तमान परिस्थितियाँ और इंसान के सुख आज के साहित्य के विषय हैं। ऐसे में ग़ज़लकार के सरोकार परम्परागत ग़ज़ल में बदलाव लाकर ही अभिव्यक्ति पा सकते हैं। इसलिए ग़ज़ल के तेवर बदलना लाज़िमी हो गया है। एक शेर में वे समझाते हैं कि आशिक के जलवों का वर्णन करने की बजाय अब ग़ज़लकार को एक विधवा के माथे की चिन्ताओं से निर्मित लकीरों को पढ़ने की ज़रूरत है–

'जो ग़ज़ल माशूक के जलवों से वाक़िफ़ हो गई
उसको अब बेवा के माथे की शिकन तक ले चलो'।

यहाँ उन्होंने स्वीकार किया है कि ग़ज़ल ने प्रेम, सौन्दर्य और रोमांस पर बहुत लिख डाला है। इससे सब वाक़िफ़ हैं, परिचित हैं। अत: अब ग़ज़ल को जीवन-यथार्थ से परिचित होना चाहिए। साहित्य मनुष्य को बिखरने से बचाता है और बिखरे हुए को समेटता भी है। अदम गोंडवी अदब से यही काम लेना चाहते हैं। वे समाज में व्याप्त विषमता से उपजे दु:ख को देख भी रहे हैं और उसे व्यक्त न कर पाने की विवशता से भी परेशान भी हैं–

'आप कहते हैं सरापा गुलमुहर है ज़िन्दगी
हम ग़रीबों की नज़र में इक क़हर है ज़िन्दगी'।

X X X X

'जो घर में ठण्डे चूल्हे पर फ़क़त ख़ाली पतीली है
बताओ कैसे लिख दूँ धूप फागुन की नशीली है'।

अदम की ग़ज़लों में गाँव और किसान के त्रासद जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है, तभी उन्हें 'हिन्दी ग़ज़ल का किसान चेहरा' कहा जाता है, जो उनकी ग़ज़लों को पढ़कर उचित ही लगता है–

'बूढ़ा बरगद साक्षी है किस तरह से खो गई
रमसुधी की झोपड़ी सरपंच की चौपाल में
खेत जो सीलिंग के थे सब चक में शामिल हो गए
हमको पट्टे की सनद मिलती भी है तो ताल में'।

समाज की उन्नति को नापने के लिए उन्होंने वही बुनियादी मापदंड अपनाने का सुझाव दिया कि ऊँची-ऊँची इमारतें देखकर उन्नति के अनुमान मत लगाइए क्योंकि आज भी असली भारत गाँवों और फुटपाथों पर दु:ख भोग रहा है–

'कोठियों से मुल्क के मेआर को मत आँकिए
असली हिन्दुस्तान तो फ़ुटपाथ पर आबाद है'।

अदम का मानना था कि देश की भ्रष्ट नौकरशाही देश के विकास के रास्ते में वर्षों से एक बड़ा रोड़ा बनकर खड़ी हुई है, वे पूछते हैं कि देश का विकास कैसे सम्भव है–

'जो उलझकर रह गई है फ़ाइलों के जाल में
गाँव तक वह रौशनी आएगी कितने साल में'।

XXXXX

'महज़ तनख़्वाह से निपटेंगे क्या नखरे लुगाई के
हज़ारों रास्ते हैं 'सिन्हा साहेब' की कमाई के।
मिसेज़ सिन्हा के हाथों में जो बेमौसम खनकते हैं
पिछली बाढ़ के तोहफ़े हैं, ये कंगन कलाई के'।

आपातकाल के दौर में अदम ने भ्रष्टाचार के अनेक वीभत्स रूप देखे थे जहाँ राजनेताओं की नैतिकता यूँ गिर गई थी कि अदम ने इसे ब्रिटिश ज़माने के लार्ड डलहौज़ी के भ्रष्टाचार तक से जोड़ दिया था–

'जो डलहौज़ी ना कर पाया वो यह हुक्काम कर देंगे
कमीशन दो तो हिन्दुस्तान को नीलाम कर देंगे'।

देश में बढ़ती आर्थिक असमानता के भयावह दृश्य अदम को बेचैन करते, वे जहाँ देखते, वहाँ अमीर और अमीर हो रहा है और ग़रीब और भी ग़रीब–

'तुम्हारी मेज़ चाँदी की, तुम्हारे जाम सोने के
यहाँ जुम्मन के घर में आज भी फूटी रक़ाबी है'।

Ajkal_October_2022.indd 10 27-09-2022 13:58:14

जबकि अदम इस विकास में श्रम के योगदान को बार-बार रेखांकित करते हुए कहते हैं कि ये जो जगमगाती रौशनी है, अट्टालिकाएँ हैं, ये चौड़ी सड़कें हैं, ये सब मज़दूरों के खून-पसीने से निर्मित हुए हैं, लेकिन आज भी उस श्रमिक की दशा पहले से गई-गुज़री हो गई है–

'वो जिसके हाथ में छाले हैं, पैरों में बिवाई है
उसी के दम से रौनक़ आपके बंगले में आई है'।

अदम ने देश के राजनैतिक तबक़े की सम्वेदनहीनता के अनेक दृश्य पेश किए हैं। जो जनता के सामने सेवक और सच्चरित्र दिखते हैं, चुने जाने के बाद कितने निःस्पृह बन जाते हैं। इस पर वे सीधे दिल पर चोट करता धारदार व्यंग्य करते हैं। उनकी दो-टूक और सपाटबयानी जब शायरी बनकर उतरती है, तब शब्द विस्फोट करते प्रतीत होते हैं–

'काजू भुने प्लेट में विस्की गिलास में
उतरा है रामराज विधायक निवास में'।

इस तरह ग़ज़ल के माध्यम से अदम तत्कालीन नेताओं के दोग़लेपन की धज्जियाँ उड़ा रहे थे। उन्होंने समाज की हर बुराई पर क़रारा प्रहार किया। राजनीति के चरित्र पर अदम तीक्ष्ण भाषा में कहते हैं–

'जितने हरामख़ोर थे कुबो-जवार में
परधान बन के आ गए पहली क़तार में'।

वे इसका कारण बढ़ती हुई धन-केन्द्रित संस्कृति को मानते हैं, जिसने जनतान्त्रिक व्यवस्था को पूरी तरह से अपने क़ब्ज़े में ले लिया है। अब पैसे के बल पर चुनाव जीते जा रहे हैं और सरकारें गिराई व बनाई जा रही हैं।

अदम जीवनभर गाँव में रहे, इसलिए वे गाँव के यथार्थ से वाक़िफ़ हैं। तभी वे ग्रामीण-जीवन की दुःख-तकलीफ़, उनके संघर्ष को अभिव्यक्त करने हेतु ग़ज़ल को वहाँ ले जाने का आह्वान करते हैं–

'ग़ज़ल को ले चलो अब गाँव के दिलकश नज़ारों में
मुसलसल फ़न का दम घुटता है इन अदबी इदारों में'।

दुष्यन्त के बाद अदम ग़ज़लकारों को कल्पना से यथार्थ की अभिव्यक्ति की ओर मोड़ देना चाहते थे, क्योंकि वे चाँद-तारों पर बात कर ख़ुद को धोखा नहीं देना चाहते–

'अदीबों, ठोस धरती की सतह पर लौट भी आओ
मुलम्मे के सिवा क्या है फ़लक के चाँद-तारों में'।

स्त्री-जीवन, विशेष रूप से दलित स्त्री-जीवन की त्रासद स्थितियों पर अदम ने अनेक शेर कहे हैं–

'मत्स्यगंधा फिर कोई होगी किसी ऋषि का शिकार
दूर तक फैला हुआ गहरा कुहासा देखिए
औरत तुम्हारे पाँव की जूती की तरह है
जब बोरियत महसूस हो घर से निकाल दो'।

आधुनिक होती दुनिया में 'स्त्री-विमर्श' के नाम पर जो कुछ भी हो रहा है, उससे अदम के गाँव की स्त्रियाँ अनभिज्ञ हैं। वे आज भी उसी अँधेरे का शिकार हैं, जहाँ राजधानी की चौंधिया देने वाली रौशनी नहीं पहुँचती। जहाँ आज भी अधिकार को समझने और उसके लिए आवाज़ उठाने वाले अक्षर नहीं पढ़े जाते। जहाँ आज भी पति होने का मतलब परमेश्वर होना और स्त्री होने का मतलब दासी होना ही होता है लेकिन, अदम इस स्थिति को बदला हुआ देखना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि इनके श्रम और त्याग के सौन्दर्य को समझा जाए। इन्हें रूह के स्तर पर महसूस किया जाए–

'कहीं हो ज़िक्र अक़ीदत से सर झुका देना
बड़ी अज़ीम ये औरत की ज़ात होती है'।

साम्प्रदायिकता पर उनके शेरों की संख्या बहुत है, लेकिन यहाँ केवल एक शेर प्रस्तुत है। एक तरफ़ अदम व्यवस्था-जनित विद्रूपताओं पर लगातार बरसते रहे, वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपने समय के ज्वलन्त सामाजिक, सांस्कृतिक सवालों से भी लगातार मुठभेड़ की है। अवाम से समरसता की अपील करते उन्होंने अनेक शेर लिखे हैं, मसलन–

'हममें कोई हूण, कोई शक, कोई मंगोल है
दफ़्न है जो बात अब उस बात को मत छेड़िए'।

वे दो-टूक शब्दों में कहते हैं, धर्म या ईश्वर का नाम लेकर, दूसरे धर्म के लोगों के घर जला देना अपने ही धर्म के प्रति वफ़ादारी नहीं है, बल्कि इसके पीछे वोट की राजनीति है, इसे जनता को समझना होगा–

'ख़ुदा का वास्ता देकर किसी का घर जला देना
ये मज़हब की वफ़ादारी हक़ीक़त में सियासी है'।

अदम अवाम को मशविरा देते हैं कि मज़हबी नग़मात की जगह जीवन की बुनियादी जंग 'भूख के ख़िलाफ़' लड़ने के लिए तैयार हो जाओ। इस ग़ज़ल में भारतीय सांस्कृतिक चेतना के विविध आयामों को अभिव्यक्ति मिली है। अदम के यहाँ वर्तमान परिवेश का गहन आकलन मिलता है। उन्होंने अपनी ग़ज़लों में साहित्य, धर्म और राजनीति के विभिन्न पहलुओं को अनेक दृष्टि से देखा है। उनमें व्यवस्था को बदल डालने की जो बेचैनी है, वह मिट्टी की महक से मह-मह है–

'जनता के पास एक ही चारा है बग़ावत
यह बात कह रहा हूँ मैं होशोहवास में'।

लेकिन अदम गोंडवी की ग़ज़लों के क्रान्तिकारी तेवर कोई दिखावटी या फ़ैशनेबल राजनैतिक शग़ल नहीं हैं, ये उनकी गहन राजनैतिक प्रतिबद्धता और परिवर्तनकामी चेतना एवं सकारात्मक प्रतिरोध का निष्कर्ष हैं।

वे जानते हैं कि भूख जीवन की अनिवार्यता है। वैसे तो रोटी को लेकर अनेक कवियों ने शेर कहे हैं लेकिन इस शेर का प्रभाव बहुत दूर तक जाता है–

'गर्म रोटी की महक पागल बना देती मुझे
पारलौकिक प्यार का मधुमास लेकर क्या करें'।

ये तो तय है कि ग़रीब और बेबस लोगों की आवाज़ थे अदम गोंडवी। भूख पर यह बहुत बड़ा शेर है। यह महक रोटी की ही नहीं, खेत में फ़सल उगा रहे उस किसान के पसीने की महक से भी जाकर जुड़ती है। हमारे गाँवों की दयनीय स्थितियों पर अदम गोंडवी दुखी होते हैं, उन्हें इस व्यवस्था से किसी तरह की उम्मीद नहीं है। वे कहते हैं कि गाँव में भूख और अभाव से ग्रस्त अपने गाँव आने पर स्वागत करेंगे। यह शेर आज के ग्रामीण जीवन की चिन्तनीय स्थिति को उजागर करता है। अपने गाँव का दृश्य प्रस्तुत करते हुए अदम कहते हैं–

'फटे कपड़ों में तन ढाँके गुज़रता हो जहाँ कोई
समझ लेना वह वो पगडंडी 'अदम' के गाँव जाती है'।

Ajkal_October_2022.indd 11 27-09-2022 13:58:14

साहित्य के क्षेत्र में फैली संकीर्णताओं और छुद्र ख़ेमेबाज़ियों पर तंज़ करते हुए फटकार की भाषा में वे कहते हैं–

'किसी का रंग धानी है किसी का रंग पीला है
जमातों में बँटा अपने अदीबों का क़बीला है'।

अदम युवा काल से जनांदोलनों से जुड़े रहे। इसलिए उन्हें भारतीय लोकतन्त्र और राजनीति का सूक्ष्म ज्ञान था और इसलिए इस व्यवस्था को बदलने का आह्वान करते हुए वे साहित्यकारों से साहित्य के सरोकारों पर प्रश्न करते रहते थे। एक शेर में वे पूछते हैं कि जब आज़ादी के बाद आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक समानता के लिए संघर्ष साहित्य का प्रमुख मूल्य था, तब यह मन्दिर-मस्जिद का मसला कहाँ से आ गया?

'यह अमीरी से हमारी फ़ैसलाकुन जंग थी
फिर कहाँ से बीच में मस्जिद व मन्दिर आ गए'।

ऐसी असन्दिग्ध राजनैतिक प्रतिबद्धता, इतनी सम्वेदनशीलता और सम्प्रेषण की ऐसी पैनी धार वाले कवि अदम ने बदलाव का बिगुल फूँक दिया था-

'एक सपना है जिसे साकार करना है तुम्हें
झोपड़ी से राजपथ का रास्ता हमवार हो'।

परिवर्तन का ये उद्दाम स्वप्न जीवन में तमाम मानसिक और भावनात्मक यातनाओं से गुज़रने के बाद पैदा होता है। शोषण और दमन से उपजा प्रतिरोध ही हिन्दी ग़ज़ल का मिज़ाज भी रहा है, दुष्यन्त की तरह ही सर्वत्र विद्रोह और नकार, प्रतिकार और मुक्ति की कामना उनके प्रत्येक शेर में व्यंजित होती है। उनके कथन में आक्रामकता और तड़प से भरी हुई व्यंग्यात्मकता बरक़रार है। इसी तड़प के चलते अदम बार-बार साहित्यकारों से अपने काल-खंड का एक नया इतिहास लिखने की बात करते हैं। हिन्दी ग़ज़ल ने हमेशा ही एक बेहतर दुनिया का ख़्वाब देखा और दिखाया है। वही मानवतावादी स्वर इन शेरों में भी उतरा है–

'मानवता का दर्द लिखेंगे, माटी की बू-बास लिखेंगे
हम अपने इस काल-खंड का एक नया इतिहास लिखेंगे'।

इस तरह अदम अपनी ग़ज़लों में नई अर्थवत्ता तथा युगीन सन्दर्भ भरने का सतत् प्रयास करते हैं। वे अपनी ग़ज़लों में यथार्थ की पहचान करने का प्रयास करते हैं। उपर्युक्त अशआर से ज़ाहिर हो जाता है कि उनकी ग़ज़लों की विषयवस्तु बहुआयामी है– सामाजिक विसंगतियाँ, आर्थिक विषमता, ग़रीबी, अभाव, साम्प्रदायिकता, आम आदमी का जीवन, नैतिक पतन, दलित चेतना, साहित्यिक बोध आदि का चित्रण उनकी ग़ज़लों में बख़ूबी हुआ है। अदम स्पष्ट रूप से सामाजिक, राजनैतिक सरोकारों के ग़ज़लकार हैं। इनकी ग़ज़लें स्वाधीन भारत की पीड़ित मनुष्यता की आवाज़ बनकर उभरी हैं। दुष्यन्त कुमार के बाद वही ऐसी शख़्सियत हैं, जिनके तमाम अशआर नारे बनकर गूँजते हैं। हिन्दी ग़ज़ल को उन्होंने एक नया मुहावरा दिया है। अदम की ग़ज़लों में जनता का असंतोष और अस्वीकार व्यंग्य की शक्ल में उतरता है। हिन्दी ग़ज़ल में दुष्यन्त के बाद जनचेतना का इतना असरदार ग़ज़लकार अदम के सिवा दूसरा हुआ भी नहीं है।

प्रभावोत्पादकता के लिए उनका सबसे मारक हथियार है– व्यंग्य, जो जनता को सोचने पर मजबूर करता है। व्यंग्य इसलिए भी सशक्त हथियार होता है क्योंकि व्यंग्यात्मकता नई विचार प्रक्रिया को जन्म देती है। भूख अदम के यहाँ सबसे बड़ा सच है। शायद इसीलिए अदम के बहुत-से शेरों में 'भूख' शब्द की आवृत्ति बहुत बार होती है– भूख की धूप, भुखमरी की धूप, भुखमरी के मोर्चे, भुखमरी की ज़द, पेट के भूगोल आदि। अदम गोंडवी ने दुष्यन्त के विनम्र प्रतिरोध को पैनी धार और प्रबल आक्रामकता के साथ व्यंग्य का जो तेवर दिखाया, उससे इन ग़ज़लों में अधिक प्रभाव पैदा हुआ। यह सच है कि अदम की ग़ज़लें गुफ़्तगू तो करती हैं, लेकिन किसी महबूब से नहीं बल्कि अवाम से, सत्ता से ! वह भी एकदम नई भाषा, नए रचाव और नई मुहावरेदारी के साथ ! विशेष बात करते हुए भी ग़ज़ल का सौन्दर्य यह है कि अदम यथार्थ को बनाए रखने का भरपूर प्रयत्न करते हैं।

अदम की ग़ज़लों की भाषा आमजन की भाषा है, अवधी मिश्रित खड़ी बोली, जो अपने रचाव और अनुभूति की तीव्रता से व्यंग्य की मारकता को उत्प्रेरित करती है। दरअसल अदम की रचनात्मकता को महज़ ग़ज़ल की भाषा, मुहावरों और शेरियत के निकष पर ही नहीं परखा जा सकता। वास्तव में परख दो तरह से हो सकती है– एक रचना के रूपगत मूल्यांकन से और दूसरा उस विधा में आते हुए नएपन की तलाश करके। अदम के यहाँ ग़ज़ल सभी स्थापित मान्यताओं में तोड़-फोड़ करती है। यहाँ शेरियत भी अपनी परिभाषा बदल लेना चाहती है। अदम की ग़ज़लों में हिन्दी-उर्दू का भेद जैसे समाप्त हो जाता है। दरअसल उन्होंने उर्दू-हिन्दी ग़ज़ल के व्यापक समाज तक पहुँचाने के लिए ही अपनी ग़ज़लों में अरबी–फ़ारसी के तमाम प्रचलित शब्दों का जमकर प्रयोग किया है। जैसे–इलहाम, जदीद, इजारेदार, कुदरत, ज़द, शफ़क़त, गरानी, पैहम, रवायतआहनी, मरदूद, बेज़ार, फ़ैसलाकुन, फ़सील, जाँफ़िशानी, मर्तबा, इदारा, रक़ाबी, तख़य्युल, शीराज़ा, गंदुम आदि। इज़ाफ़त जो थोड़ी-बहुत अदम के शेरों में मिलती है वह दरअसल उर्दू ग़ज़ल से ही प्रेरित है। बोलचाल के शब्दों और मुहावरों का यहाँ निखरा हुआ रूप प्रस्तुत हुआ है। उन्होंने अपनी ग़ज़लों में अनेक प्रसिद्ध साहित्यकारों के प्रसंगों को भी याद किया है।

इस तरह अदम गोंडवी हिन्दी ग़ज़ल में दुष्यन्त के उत्तराधिकारी के रूप में आए हैं। भारत की जिस ग्राम्य-चेतना को ग़ज़ल में दुष्यन्त स्पर्श नहीं कर पाए थे, उसे अदम ने पूरी शक्ति से प्रस्तुत किया। अदम की ग़ज़लों में हमें राजनैतिक विद्रूपता का सच्चा चित्रण भी मिलता है। वैचारिक स्तर पर वे जैसे एक प्रतिपक्ष की भूमिका निभाते हुए लगते थे। उनके जीवन और उनकी रचनाओं में कहीं कोई फाँक नहीं है। अदम की ग़ज़लों में छुपा अनुभूति का सघन ताप आमफ़हम भाषा में पाठकों के हृदय से रिश्ता बनाने में सफल हो जाता है और सहज ही जन-काव्य बन जाता है।

वास्तव में अदम की ग़ज़लियत का उल्लेखनीय पहलू यह है कि वे अपने शेर नई ग़ज़ल भाषा में ढालते हैं। उन्होंने शेर कहने की बिलकुल नई तरकीब निकाली है। लगता है जनचेतना को प्रभावित करना ही इन ग़ज़लों का अभीष्ट है। ग़ज़ल को गाँव की माटी से जोड़ते हुए उसकी भाषा में नई धार पैदा हुई है। तभी तो उनका एक-एक शेर जनमानस के मन को आंदोलित करता है। अर्थात् अदम गोंडवी विद्रोही तेवर के एक जनकवि हैं और उनकी ग़ज़लें हिन्दी कविता की अमूल्य धरोहर हैं। इस धरोहर का समकालीन सन्दर्भों में गहन अध्ययन और पुन: मूल्यांकन अवश्य होना चाहिए। ❑

Ajkal_October_2022.indd 12 27-09-2022 13:58:14

● लेख



हरदेवी
हिन्दी की पहली यात्रा-वृत्तान्तकार

गरिमा श्रीवास्तव

परम्परा से यात्राओं को पुरुषों का क्षेत्र ही माना जाता रहा है। यात्रा के साथ बहुत-सी असुविधाएँ और रोज़मर्रा की चुनौतियाँ जुड़ी होती हैं। इसलिए पुरुष के लिए यात्रा करने का निर्णय जितना सहज होता है सम्भवत: स्त्री के लिए उतना नहीं। परस्पर स्त्रैण गुणों और घर के भीतर की ज़िम्मेदारी के दायित्व के साथ ही शिक्षा का अलग स्तर, परदे में रहने की विवशता, मातृत्व-सम्बन्धी उत्तरदायित्व, आर्थिक पर-निर्भरता समेत कई महत्वपूर्ण कारण हैं जो स्त्रियों को यात्रा से रोकते रहे हैं। जहाँ तक स्त्रियों द्वारा लिखे यात्रा-वृत्तान्तों का प्रश्न है पूरे वैश्विक परिदृश्य पर पुरुषों के यात्रा-वृत्तान्तों की अपेक्षा स्त्री के खाते में इनकी संख्या गिनी-चुनी है। इसके पीछे के कारणों की पड़ताल यदि हम करें तो पाएँगे कि स्त्रियों का यात्रा करना घरेलू चारदीवारी और सुरक्षा के दायरे को छोड़कर एक अनदेखी-अनजानी स्थिति में अपने-आप को डाल देना था। दूसरे, स्त्रियाँ अपना लिखा प्रकाशित करने में संकोची भी रहीं और सीमाबद्ध भी। सार्वजनिक जीवन में स्त्री और पुरुषों को जो भूमिकाएँ दी गईं उनमें से स्त्री के हिस्से में घरेलू भूमिका आई। ऐसी स्त्रियाँ जिन्होंने यात्राएँ भी कीं और अनुभव भी लिखे, उन्हें साधारण रोज़नामचा और आत्मप्रशंसा की श्रेणी में रख दिया गया जबकि स्त्रियों द्वारा लिखे यात्रा-वृत्तान्तों पर ध्यान दिया जाता तो सम्भव है कि पुरुषों के यात्रा-वृत्तान्तों की पूरक होकर वे यात्रा-वृत्तान्त लेखन की मुकम्मल तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत कर सकतीं।

उन्नीसवीं सदी के दौरान ब्रिटेन से भारत आने वाली स्त्रियों के बहुत-से यात्रा-वृत्तान्त हमें मिलते हैं जिनमें तत्कालीन यूरोप और औपनिवेशिक भारत के चित्र और उनके स्वानुभूत अनुभव चित्रित हैं। साम्राज्यवाद के प्रचार-प्रसार ने स्त्रियों का एक ढंग से भला ही किया, वे बाहर निकल कर दुनिया देख सकीं। वर्जीनिया वुल्फ़ ने विक्टोरियाई समाज में स्त्री की घर में देवदूती की भूमिका की ओर संकेत किया था, स्त्रियों को वे सब काम करने की मनाही थी जिन्हें सिर्फ़ पुरुष के कार्यक्षेत्र के रूप में ग्रहण किया जाता था। बोकाशियो और अरस्तू जैसे विचारकों ने स्त्रियों के लिए दैहिक शुचिता और मानसिक पवित्रता को अनिवार्य जीवन-मूल्यों के रूप में घोषित कर दिया। साथ ही पब्लिक स्फियर में पुरुष की श्रेष्ठता को बारम्बार स्थापित करने का प्रयास किया गया और ऐसे सब मामले जिनमें नीति-निर्धारण या नेतृत्व की ज़रूरत नहीं होती, उनमें स्त्रियों को स्थान दिया गया। रेनेसां के सम्पूर्ण विचार में स्त्री के लिए 'घरेलू देवदूती' की भूमिका तजवीज़ की गई। एथेंस को इसके उदाहरण के तौर पर देखा जा सकता है जहाँ कला और बौद्धिकता के उत्कृष्ट माहौल में भी स्त्रियों के लिए घर की चारदीवारी को ही सबसे उपयुक्त स्थान माना जाता था। समूचे दरबारी साहित्य में स्त्रियों के प्रति रुढ़िग्रस्त मानसिकता के दर्शन होते हैं, जिसके पीछे सामाजिक-सांस्कृतिक कारणों को देखा जा सकता है। स्त्रियों को आर्थिक, राजनैतिक और बौद्धिक क्षेत्रों से दूर रखा गया जहाँ वे सत्ताविहीनता की स्थिति में थीं। कुछ ने प्रतिरोध का प्रयास भी किया, जिसके लिए लेखन को उन्होंने माध्यम बनाया। विक्टोरियाई समाज में साहित्य की सभी विधाएँ अस्तित्व में आईं। औपनिवेशिकता के प्रचार और प्रसार ने भी यात्रा-साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। स्त्री रचनाकारों ने जेंडर के प्रश्न पर अपने ढंग से विचार किया, इस दौरान लिखने वाली स्त्रियाँ नस्लवाद और जेंडर के सवाल को उपनिवेशवाद से भी जोड़कर देख रही थीं। उन्होंने अपने पाठकों को सुशिक्षित करने के लिए यात्रा-संस्मरणों का उपयोग किया। सामाजिक, राजनैतिक परिदृश्य पर एक स्त्री के अनुभवों की अभिव्यक्ति यात्रा-वृत्तान्त के माध्यम से सम्भव हो पाई। ये स्त्रियाँ यात्रा-वृत्तान्त लेखन के माध्यम से सांस्कृतिक परिदृश्य पर नई संरचना का निर्माण करती दीखती हैं। इस नज़रिए से हम हरदेवी रोशनलाल द्वारा रचित 'लन्दन यात्रा' और 'लन्दन जुबली' शीर्षक यात्रा-वृत्तान्त को देख सकते हैं, जिनका प्रकाशन सन् 1888 में हुआ।

ऐसा अनुमान है कि उच्च शिक्षा के लिए लन्दन जाने वाली हरदेवी पहली हिन्दीभाषी स्त्री थीं। एक स्त्री का पढ़ाई के लिए उत्तर भारत से लन्दन जाना उन दिनों एक बड़ी ख़बर थी, कई अंग्रेज़ी और हिन्दी पत्रों ने इस ख़बर को सुर्ख़ियों में रखा। 1886 की 'द इंडियन मैगज़ीन' ने दादाभाई नौरोजी, रतनजी-बनर्जी, लक्ष्मीनारायण तथा अपने भाई सेवाराम के परिवार के साथ हरदेवी के लन्दन जाने की ख़बर प्रकाशित की। ('हिन्दू लेडीज़' श्रीमती हरदेवी और श्रीमती सेवाराम के लन्दन पहुँचने तथा स्वागत की सूचना 'द इंडियन मैगज़ीन' के अंक 181-182, नेशनल इंडियन एसोसिएशन, लन्दन, 1886 में भी प्रकाशित हुई थी)। हरदेवी की लन्दन यात्रा अकारण नहीं थी, बल्कि वे शिक्षा ग्रहण करने के लिए लन्दन गई थीं और उनके लन्दन जाने और पढ़ने की व्यवस्था नेशनल इंडियन एसोसिएशन ने की थी। हरदेवी से सम्बद्ध सूचनाएँ नेशनल इंडियन एसोसिएशन की पत्रिका 'इंडियन इंटेलिजेंस' स्तम्भ के तहत छापी जाती थीं। हरदेवी के नाम से से जो रचनाएँ मिलती हैं उनमें दो यात्रा-वृत्तान्तों के अतिरिक्त 'स्त्री विलाप', 'हुक्मदेवी', 'स्त्रियों पे सामाजिक अत्याचार' शीर्षक विनिबन्ध हैं। 'भारत-भगिनी' शीर्षक

सम्पर्क : *मो. 9968971716, ई-मेल : drsgarima@gmail.com*

Ajkal_October_2022.indd 13 27-09-2022 13:58:15

पत्रिका के सम्पादन के अतिरिक्त इन्होंने 'सीमंतनी उपदेश' भी लिखी, ऐसा चारू सिंह ने अपने शोध में माना है। हरदेवी के पिता रायबहादुर कन्हैयालाल थे जिनकी ख्याति इतिहासकार और भवन-निर्माता के रूप में थी। उन्होंने अपनी पुत्री हरदेवी और पुत्र सेवालाल को अच्छी शिक्षा दी। 'तारीख़-ए-लाहौर' की भूमिका में अपना परिचय देते हुए रायबहादुर कन्हैयालाल ने खुद को लाला हरनारायण कायस्थ जलेसरी हाल-ए-मुवत्तिन शहरे लाहौरी (minutes of proceedings of the Institution of civil Engineers, 1888, सम्पादक जेम्स फ़ॉरेस्ट, लन्दन, खंड XCIV, पृष्ठ 313-317) बताया है। लार्ड नार्थब्रुक ने उन्हें 'रायबहादुर' की उपाधि प्रदान की थी। हरदेवी अनुमानत: 1863 में जन्मी होंगी क्योंकि 1905 में छपे एक दस्तावेज़ में उन्हें 42 वर्ष का बताया गया है ('भारत-भगिनी' के सर्कुलेशन का ब्यौरा देते हुए लिखा गया है, 'प्रोपराइटर : श्रीमती हरदेवी, कायस्थ, एज-42, डॉटर ऑफ़ द लेट राय बहादुर कन्हैयालाल, एग्ज़ीक्यूटिव इंजिनियर, लाहौर एंड वाइफ़ ऑफ़ रोशनलाल, बी.ए.- बैरिस्टर एट लॉ (01 पब्लिशर इज़ हेमराज खत्री, एज 34 ('द पंजाब प्रेस, 1880-1905, नार्मन जेरल्ड बैरियर, पॉल वेल्ज, अंक 14 ऑफ़ ओकेज़नल पेपर्स : साउथ एशिया सीरीज़, मिशिगन स्टेट यूनिवर्सिटी, एशियन स्टडीज़ सेन्टर, प्रकाशक रिसर्च कमिटी ऑफ़ पंजाब, 1970)। हरदेवी बाल विधवा थीं और बैरिस्टर रोशनलाल से उनका दूसरा विवाह हुआ था ('हिन्दू विडोज़ बाई वन ऑफ़ देम, रिटेन बाय अ यंग विडो, एंड ट्रांसलेटेड बाय एन इंग्लिश लेडी (जर्नल आफ़ द नेशनल इंडियन एसोसिएशन इन एड ऑफ़ सोशल प्रोग्रेस इन इंडिया, नवम्बर 1881, लन्दन, सी. के. मगन पॉल एंड कम्पनी, पृष्ठ 624-630)

हरदेवी को अपने पिता से शिक्षा के संस्कार मिले थे। वे आगे चलकर नेशनल सोशल कांग्रेस की सदस्या और हिन्दी की पहली स्त्री-सम्पादक के रूप में जानी गईं। हरदेवी क्रान्तिकारियों की सहायता करती थीं। 8 अक्तूबर, 1888 के 'द टाइम्स ऑफ़ इंडिया' में यह ख़बर छपी थी कि हरदेवी ने लाहौर में 150 पर्दानशीन स्त्रियों की सभा आयोजित की थी जिसमें लेडी डफ़रिन को धन्यवाद ज्ञापित करने के साथ-साथ कई अन्य प्रस्ताव भी पास किए गए। चारू सिंह ने एक विस्तृत शोध आलेख में हरदेवी के रचनात्मक योगदान की विस्तृत चर्चा की है। इसके अलावा 1881 में प्रकाशित 'स्त्री विलाप' जो कि हरदेवी की ही रचना मालूम होती है, उसमें उनके विवाह की आयु 14 वर्ष बताई गई है। बहरहाल, हरदेवी एक युवा विधवा थीं और लन्दन जाने के पहले एक सुशिक्षित महिला थीं। इसका पता 'लन्दन यात्रा' को पढ़कर चल जाता है। लेखन तथा जीवन की दूसरी घटनाएँ तथा तथ्य इस निष्कर्ष पर पहुँचाते हैं कि वे ही 'स्त्री विलाप' 1881, 'सीमंतनी उपदेश', 1882 तथा एक विधवा युवती द्वारा 1881 में लिखे हुए लेख 'हिन्दू विडोज़' की लेखिका थीं। 'स्त्री विलाप' 1881 में शाहजहाँपुर के 'आर्य दर्पण प्रेस' से छपी 'एक विधवा स्त्री' की रचना है जिसकी भाषा-शैली तथा विचारधारा पूर्ण रूप से 'सीमंतनी उपदेश' से मेल खाती है। यह पुस्तक 'सीमंतनी उपदेश' की पूर्व पीठिका जान पड़ती है।" (चारू सिंह, 'अज्ञात हिन्दू स्त्री कैसे बनती है?', 'आलोचना' पत्रिका, अंक 56, अप्रैल-जून 2016)। हरदेवी ने आत्मकथा भी लिखी थी जो उर्दू में थी, लेकिन उसकी कोई प्रति अभी तक हमें उपलब्ध नहीं हो सकी है। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि हरदेवी ने पुनर्विवाह किया था। लन्दन से लौटकर हरदेवी ने एक और दुस्साहसी क़दम उठाया। यह था उच्च जाति की एक हिन्दू विधवा का प्रेम-विवाह। बरेली निवासी रोशनलाल लन्दन से 1887 में बैरिस्टरी की पढ़ाई करके लौटे। वह इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत कर रहे थे। रोशनलाल सक्सेना कायस्थ थे और अपने स्कूल के दिनों से ही आर्यसमाजी थे। लन्दन में पढ़ाई करने वाली हरदेवी से उनका परिचय उसी दौरान था। लूसी केरोल ने 'द हिन्दुस्तानी कायस्थ' में हरदेवी तथा रोशनलाल की लन्दन से चली आती मित्रता का ज़िक्र किया है। (चारू सिंह, 'अज्ञात हिन्दू स्त्री कैसे बनती है?', 'आलोचना' पत्रिका, अंक 56, अप्रैल-जून 2016)

हरदेवी अपने समय में बेहद प्रगतिशील विचारों और रचनात्मक प्रतिभा से सम्पन्न स्त्री थीं। स्त्री-पुरुष समानता पर बहुत गम्भीरता से उन्होंने विचार किया, उनके समूचे लेखन में जेंडर-सम्बन्धी प्रश्न बिखरे हुए हैं, जो उनके समय से बहुत आगे की बात है। स्त्री-पुरुष में समता की माँग करते हुए 'स्त्रियों पर सामाजिक अन्याय' शीर्षक लेख में उन्होंने लिखा, "हमें उन मनु आदिक महात्माओं से कभी ऐसे निर्दय शास्त्र की आशा नहीं है। यह किसी स्वार्थप्रिय स्त्रीकुल के शत्रु का रचा हुआ धर्मशास्त्र जिसे अधर्मशास्त्र कहना चाहिए, मालूम होता है। अज्ञानी और मूर्ख विचारहीन पुरुष इसी की आज्ञाओं को प्राचीन मत समझ स्त्रियों के साथ अनेक प्रकार के अन्याय कर रहे हैं। इनकी संख्या करने से एक पुस्तक बन सकती है, इनमें से जो बड़े-बड़े अन्याय हैं यहाँ प्रस्तुत हैं–

1) पुत्र-कन्या के पालन में भेद करना, 2) विद्या से वंचित रखना, 3) अज्ञानावस्था में विवाह कर देना, 4) अयोग्य वर से विवाह कर देना, 5) पुनर्विवाह से रोकना, 6) स्वामी धन और पिता के धन में भाग न देना, 7) सहधर्मिणी स्त्री के जीवित रहते दूसरा विवाह कर लेना---

बिना स्त्री-पुरुषों की सहायता के संसार का कोई काम ठीक तरह से नहीं चल सकता पर जब तक उन्हें उत्तम विद्या-शिक्षा से अपने बराबर नहीं समझा जाएगा तब तक देशोन्नति जैसी होनी चाहिए, नहीं होगी। यही कारण है कि लोगों के उत्साह उद्योग का जैसा फल होना चाहिए देखने में नहीं आता। वह रोक क्या है स्त्रियों की अविद्या, मूर्खता जो अनेक रूपों में देशोन्नति का मार्ग रोके खड़ी है। परमोत्साही देश-हितैषी पुरुषों को इसी के भय से अनेक बार बड़ी-बड़ी कठिनाइयों से होकर चलना पड़ता है, उनके उत्तम देशहितकारी विचारों को बहुत प्रहार खाने पड़ते हैं। इसका यही कारण है कि मूर्ख स्त्रियाँ उनके शुभ विचार से सहमत होती हैं और जब तक उनकी सम्मत ले, उन्हें शरीक न किया जाएगा तब तक कुसंस्कार कुरीतियों से पीछा छुड़ाने की आशा करना सर्वथा झूठ है। भद्रगणो ! यदि देश की सच्ची उन्नति चाहते हो और अपने भविष्यत् सन्तान की भलाई तुमको अभीष्ट है और दूसरों की दृष्टि में गौरवता का कुछ ख़याल है तो सबसे प्रथम अपनी स्त्रियों की दशा को सुधारो और उनके अधिकारों पर पूरा ध्यान दो। नहीं तो भविष्यत् सन्तान के लिए इसका परिणाम इस समय में भी कहीं बढ़कर भयानक होगा। पहले मूल को सुधारो। उसके फल, शाखा, पत्ते आप-से आप बिना यत्न के अच्छे हो जाएँगे।" (हरदेवी, 'स्त्रियों पर सामाजिक अन्याय', पृष्ठ-2)

हरदेवी हिन्दी पत्रिका 'भारत-भगिनी' का सम्पादन भी कर रही थीं, उन्होंने सभाओं के आयोजन किए, चन्दा एकत्र करने के लिए, समाज-सुधार व राजनैतिक क़ैदियों की मदद के लिए अभियान जारी

Ajkal_October_2022.indd 14 27-09-2022 13:58:15

रखे। 'सुगृहिणी' पत्रिका के जुलाई अंक में हरदेवी के लन्दन से लौटने का समाचार छपा। 'सुगृहिणी' के 'समालोचना' शीर्षक के अंतर्गत 'भारत-भगिनी' का परिचय दिया गया, "इस मासिक पत्रिका की सम्पादिका हमारी परम मान्या श्रीमती हरदेवीजी हैं, इस साल की पहली जून (1889) से इस अवलोकित मनोरंजिनी पत्रिका का प्रकाशन लाहौर नगर से आरम्भ हुआ है।" 'भारत-भगिनी' 1906 तक प्रकाशित हुई। स्त्री जागरण और स्त्रियों में साहित्यानुराग उत्पन्न करने में इस पत्रिका ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है हरदेवी सम्भवत: टीचर्स ट्रेनिंग के लिए लन्दन गई थीं। वहीं पर उनकी मुलाक़ात रोशनलाल से हुई थी। हरदेवी ने 'लन्दन यात्रा' शीर्षक वृत्तान्त 1888 में छपवाया। 'लन्दन यात्रा' के प्रारम्भ में ही वे यह स्पष्ट कर देती हैं कि यह वृत्तान्त उन्होंने अपनी भारतीय भगिनियों के लिए छपवाया है। भूमिका में ही हरदेवी कहती हैं, "प्यारी पाठिकाओं, आज मैं अपनी यात्रा का वृत्तान्त लेकर तुम्हारी सेवा में उपस्थित हुई हूँ।"

हरदेवी के यात्रा-वृत्तान्त को उनके लेख 'स्त्रियों की दशा' से जोड़कर देखना चाहिए। यद्यपि वे विदेशी भूमि पर अपने अनुभवों को लिखती हैं, परन्तु साथ-ही-साथ प्रभावी सामाजिक-सांस्कृतिक भूमिकाओं और उनकी परिभाषाओं पर भी टिप्पणी करती चलती हैं। उनकी इन टिप्पणियों को भारतीय स्त्री की भूमिका के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है। उनका यात्रा-वृत्तान्त इस बात की तस्दीक़ करता है कि स्त्री अपनी उड़ान भरने के लिए तैयार है। वर्जीनिया वुल्फ़ ने विक्टोरियन स्त्री के बारे में लिखा है कि उससे उम्मीद की जाती है कि वह पितृसत्ता को पोषण दे, कभी निजी विचार न रखे यानी उसकी अपनी कोई सोच-समझ न हो।

उन्नीसवीं सदी के दौर में लिखे गए यात्रा-वृत्तान्तों में जेंडर के मुद्दे भी अनुस्यूत हैं। मसलन यदि हरदेवी के यात्रा-वृत्तान्त को ही देखें तो यह वृत्तान्त महज़ एक यात्रा-संस्मरण नहीं है बल्कि एक औपनिवेशिक व्यवस्था के यथास्थितिवाद से निकलकर अंजाने प्रदेश की यात्रा की चुनौती स्वीकार करना भी है, साथ ही अपने खान-पान, रहन-सहन के साथ बग़ैर किसी विशेष समझौते के लम्बी समुद्र यात्रा करना, स्वास्थ्य-सम्बन्धी चुनौतियों, निरामिष भोजन और भाषा तथा सम्प्रेषण की चुनौतियों से रू-ब-रू होना दरअसल इतना सहज नहीं रहा होगा जितना दिखता है। हरदेवी विदेश यात्रा पर जाने से पहले स्त्रियों के समूहों में अपनी सम्भावित यात्रा के बारे में बताती हैं। पर्दानशीन औरतों के समूह के लिए किसी स्त्री का विदेश गमन एक आश्चर्य की घटना थी। वे स्त्रियों से की गई बातचीत को भी ज्यों-का-त्यों वृत्तान्त में लिख देती हैं। 'लन्दन यात्रा' में उन्हीं स्त्रियों के हवाले से लिखती हैं, "दूसरे दिन बहुत-सी बिरादरी की स्त्रियाँ मिलने आईं। हमारा विलायत जाना तो इन लोगों पर आगे से विदत था इसलिए यह एक बड़े अचरज से हमको देखतीं और बहुत असभ्य विचारहीन प्रश्न भी करती थीं। यह बिचारी जिनको कठिन परदे के कारण सिवाए मौत के कोई घर से बाहर निकाल नहीं सकता। विचार नहीं सकतीं कि एक हमारी जैसी परदे में रहने वाली स्त्री इतनी दूर विदेश में जाने का साहस कर सकती है जो कभी किसी अंगरेज़ की आवाज़ सुनकर रेल में गाड़ी के अंदर ही घबरा जाती हैं और सूरत देख रंग फक्क हो जाता है उनके निकट जहाज़ में अंगरेज़ों के साथ बैठकर जाना एक स्त्री के लिए असम्भव बात थी, वे यह कहती थीं।

प्रश्न- क्या तुमने विलायत जाने के लिए और रास्ते की तकलीफ़ें, समुन्दर से डर, पानी में जाने को अपना दिल मज़बूत बना लिया है। अंगरेज़ों में मुँह खोल कर तुम से कैसे बैठा जाएगा। उनसे बातचीत करते हुए तुम्हें डर नहीं लगेगा?

उत्तर- दूर देशों में जाने में कोई डर की बात नहीं है किन्तु एक प्रकार की ख़ुशी जो विदेश में नई चीज़ों के देखने से हुआ करती है, होगी और जो लोग रात-दिन उनमें जाते-आते हैं वे भी हमारे-तुम्हारे समान मनुष्य हैं। भेद केवल इतना ही है कि वे पूर्ण स्वाधीनता से पृथ्वी में भ्रमण कर अनेक विद्या लाभ कर स्वेच्छा से सुखी होते हैं। हम-तुम जन्म से एक ही घर में रहने के कारण उससे दूर हैं और विचार भी नहीं सकतीं। अंग्रेज़ जाति के स्त्री-पुरुष भी हमारे समान ही मनुष्य हैं। उनसे बातचीत करने में कोई डर की बात नहीं और रहा परदा जिसे आज तुम अपनी पुरानी चाल कहती हो, यह हमारे प्राचीन आर्यों की रीत नहीं है। इस वक़्त न्यायशील अंग्रेज़ों के राज में उस पुरानी दुखदाई रसम में अपनी बहू-बेटियों को क़ैद रखना जिससे सिवाए उनको शिक्षा के उनका बहुत-सा उनका अपना भी नुक़सान होता है, जारी रखना अच्छा नहीं है।" ('लन्दन यात्रा', पृष्ठ-9)

सार्वजनिक क्षेत्र में स्त्री की सीमित भूमिका को वह भ्रमण करके चुनौती ही नहीं देतीं बल्कि कई अन्य के लिए सीमित संसार के बाहर वृहत्तर संसार के दरवाज़े भी खोलती हैं। हरदेवी सार्वजनिक क्षेत्र में स्त्री को शामिल किए जाने के पक्ष में आवाज़ भी उठाती हैं। यात्रा के दौरान अपने कष्टों का भी वर्णन खुलकर करती हैं, "सुबह के नौ बजे अहमदाबाद पहुँचे। यहाँ पर कोई अच्छा अस्थान न मिलने से सराय में उतरना पड़ा। दिनभर तो शहर के प्रसिद्ध अस्थान बाज़ार देखते बीता। रात को बड़ा कष्ट सहना पड़ा। मालूम होता है मानो किसी नरक में डाल दिए गए हों। मच्छर और खटमल एक पल को चैन नहीं लेने देते थे। उधर दुर्गन्धी के मारे सिर फटा जाता था। गरमी का जोर भी तिस पर ज़्यादा खाए लेता था। हवा कहीं नाम को न थी। सबके हाथों में पंखे कभी अंदर कभी बाहर बहुतेरा झलते पर वह खून के प्यासे मच्छर मेह की तरह गरज-गरज कर बरस रहे थे। आख़िर तड़प कर रात कटी सवेरे उठ कर देखे तो सबका शरीर सूज गया है मुँह पर मानो सीतला-सी निकल आई हो।" ('लन्दन यात्रा', पृष्ठ-11)

हरदेवी अपने यात्रा-संस्मरण में सिर्फ़ अपने यात्रा अनुभवों को ही नहीं बतातीं बल्कि एक तरह का विमर्श भी तैयार करती हैं। यह दरअसल एक तरह का प्रतिरोधी विमर्श है जो स्त्री की भूमिका 'घरेलू देवदूती' से हटकर सत्ता और बौद्धिक व्यक्तित्व की भूमिका में देखने की कोशिश है। वह स्त्रियों के अपेक्षाकृत 'कमज़ोर' होने की सैद्धांतिक बहस से टकराती हैं, वह अपने को ज्ञान के दरवाज़े खटखटाते हुए देखती हैं। ये क्षमता उन्होंने यात्रा के अनुभव से ग्रहण की है। इसके साथ ही वह पूर्व और पश्चिम की स्त्रियों, उनके ज्ञान, चरित्र, स्वभाव की तुलना भी करती चलती हैं– "कहाँ तक कहें इस सौभाग्य देश की स्त्रियाँ पूरी स्वाधीनता के साथ जीवन सुख का लाभ ले रही हैं, जिन्हें देख आजन्म पराधीना दुर्भाग्य भारत वासनी भगनियों का चित्र नेत्रों के आगे आ मन में अनेक कष्टों को उपजाता है और ध्यान आता है कि हे जगदीश यदि पृथ्वी पर तुमने समान वस्तुएँ रची हैं और मनुष तो उनकी

Ajkal_October_2022.indd 15 27-09-2022 13:58:15

प्रारब्ध समान क्यूँ नहीं बनायी। हम अभागीनी भारत अबलाओं ने क्या तुम्हारा अपराध किया है जिनकी स्वाधीनता को तुमने उनके भाग्य से एकदम जुदा कर दिया, हाय वह पराधीन पशु जीवन कब तक भोगेंगी, कब और किस युग के अंत में उनका उद्धार होगा वह कब मनुष्य योनि में आए जीवन को सफल जानेंगी।" ('लन्दन यात्रा', पृष्ठ-120)

हरदेवी निश्चित रूप से शाकाहारी रही होंगी। पानी के जहाज़ पर स्त्रियों और पुरुषों के लिए अलग-अलग केबिन बने हुए थे। हरदेवी इससे पहले पानी के जहाज़ से अपरिचित ही थीं। जहाज़ में यात्रियों के लिए नौकरों द्वारा भोजन परोसने का ज़िक्र वे करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वे लन्दन-यात्रा के दौरान प्रथम श्रेणी के केबिन में यात्रा कर रही थीं। वे यात्रा के दौरान श्वेत स्त्री के दुर्व्यवहार का भी ज़िक्र करती हैं। बिना प्रात:कालीन क्रियाओं के बिस्तर पर चाय-कॉफ़ी पीने के संस्कार उन्हें आहत करते हैं। वे दर्ज करती हैं, "चाह कॉफ़ी सब बिस्तरे पर ही मिल रही थी जो हम विदेशियों के लिए बड़ा अचम्भा था याने अंगरेज़ स्त्री-पुरुष बिना हाथ-मुँह धोये पड़े-पड़े ही माखन-रोटी चाह काफ़ी पी रहे थे। उपरान्त इसके ब्रेकफ़ास्ट की तियारी हुई और उसी कमरे में माँस लाया गया जिसकी दुर्गन्ध तमाम जहाज़ में फैल गयी पर किसी को उसमें तनिक भी घृणा मालूम ना देती थी। हम विदेशियों को पहले ही दिन माँस गन्धी सूँघने को मिला था इसलिए मारे बदबू के मगज फटा जाता था। बहुतेरा खिड़की से बाहर मुँह निकाल कर बैठने पर उस की सर्वत्र लपटें उठ रही थीं। जी घबराता इस वक्त यह जहाज़ बड़ा दुखदायी मालूम दिया, आख़िर लाचार हो मुँह लिपटे बिस्तरे पर पड़े रहे। खाने की घंटी बजी सब स्त्री, पुरुष मुँह-हाथ धोये कपड़े पहन अपने-अपने केबिनों से निकल कुरसियों पर आन बैठे-खाना शुरू हुआ, सब प्रसन्न होकर आपस में हँसी-ख़ुशी बातें करते जाते थे और उसी दुर्गन्धमय माँस का बड़ी इच्छा के साथ भोजन कर रहे थे। इस भाँति खा-पीकर सब ऊपर चढ़ गए पर यह दुर्गन्ध दूर न हुई। हमारे साथ कुछ अतर भी था जिसे निकाल रुमाल में लगाये सूँघा, जरा उस सुगन्ध ने अपना असर किया, हाथ-मुँह धोये कपड़े पेहने ऊपर जाए देखा जहाँ तक दृष्टि जाती पानी-ही-पानी नज़र आता, पहाड़, वृक्ष, ज़मीन का कहीं निशान तक दिखाई ना देता। सब स्त्री-पुरुष बालिका-बालक इधर-उधर खेल रहे थे कुछ कुरसियों बेन्चों पर बैठे समुद्र को देख रहे थे, इस वक़्त स्वच्छ वायु बड़ी धीमी और मन्द गति से चल रही जिससे तनिक भी हाल नामालूम देती। ऐसा जान पड़ता मानो हम ज़मीन पर चल रहे हैं। जहाज़ की छत सुन्दर सफ़ा पानी से धोई हुई कहीं तृण तक दिखाई न देता था। सब वस्तु मनुष्य सफ़ा स्वच्छ दिखाई देते। मलीनता का कहीं चिन्ह तक ना था। इस समय बड़ी कठिनता हमारे लिए यह थी कि उनकी भाषा याने अंगरेज़ी की ज़रा-सी समझ हमें ना आती। बहुत-सी स्त्रियाँ विदेशी जान बड़ी दया और प्रसन्नता से बातचीत करना चाहतीं पर एक-दूसरे के निकट जड़ के समान थे इससे और भी दम घुटता। कोई-कोई उनमें ज़रा हिन्दुस्तानी जानता तो कुछ एक-दो बात हो जातीं नहीं तो चुपचाप बैठे तमाशा देखा करते या सब हिन्दुस्तानी आपस में बात-चीत करते। तो इस जहाज़ में याने लन्दन के यात्रियों में सब मिला का बारह थे जिनमें दो मुसलमान बाकी सब हिन्दू। अब दुपहर के खाने की तैयारी होने लगी और उसी प्रकार खाना मेज़ पर लगाए घंटी बजाई गई। सब प्रसन्न होकर भोजन कर फिर ऊपर अपने-अपने अस्थानों में आन बैठे। इसी भाँति पाँच बजे चाह पीने की घंटी बजी और रात को सात बजे फिर खाना, उसी भाँति मेज़ पर लाया गया इसके साथ बहुत प्रकार का माँस था। इसलिए अब दुर्गन्ध का हाल कुछ और ही हुआ। मालूम होता समुद्र में आकाश में वायु में चारों तरफ़ भर गई है। कहीं निषतारा ना था क्रमश: रात होये अंधकार हो गया अब कुछ दिखाई ना देता।" ('लन्दन यात्रा', पृष्ठ-31)

लन्दन पहुँचकर होटल में ठहरने के अनुभव को उन्होंने खूब रुचिकर ढंग से लिखा है। स्पष्ट है 'लिफ़्ट' की सुविधा हरदेवी के लिए नई रही होगी, जो कि स्वाभाविक ही है। वे लिखती हैं, "सारा शहर लाँघ कर रात के ग्यारह बजे नियत अस्थान अर्थात होटल में पहुँचे, यह शहर के दूसरे कोने और उसके ऊपर बड़ा भारी मकान है। इसके नौकर बड़ी ख़ातिर से पेश आए। असबाब सहित हम सबको एक छोटे-से कमरे में ले गए जो मख़मल की गद्दी और शीशा गिलास से खूब सजा हुआ था। उसमें बैठते ही दरवाज़ा बन्द कर दिया। इससे बहुत शंकाएँ मन में उठने लगीं। इतने में मालूम हुआ कि वह कमरा ऊपर को उठ चला और एक मिनट में छठी मंज़िल में पहुँचे। दरवाज़ा खोल दिया गया। इस उड़ने वाले कमरे ने और भी आश्चर्य में डाला बहुतेरा सोचा कुछ समझ ना आई। सोने के कमरे जिनकी सजावट का वर्णन लेख बढ़ने के भय से नहीं करते पर इतना कहना ज़रूर है कि शायद हमारे देश में किसी राजा-महाराजा को जैसे नसीब होते होंगे।" ('लन्दन यात्रा', पृष्ठ-81)

पानी के जहाज़ से यात्रा के बाद वे इटली, स्विट्ज़रलैंड होते हुए लन्दन पहुँची थीं, यह यात्रा उन्होंने रेल से की थी, हालाँकि वे इस दौरान एक बार भी किसी निजी प्रसंग का ज़िक्र नहीं करतीं लेकिन रेल मार्ग की प्राकृतिक सुन्दरता की चर्चा बार-बार करती हैं, "रेल भी यहाँ निराली गति से चलती है- पहाड़ों में ऊपर-नीचे चढ़ने के भय से छह-सात गाड़ी से ज़्यादा इसमें नहीं लगाते और इस पर भी आगे पीछे दो इंजन जोते जाते हैं कहीं पर्वत के नीचे-नीचे उनकी प्रदक्षिणा करती हुई दूसरे पर्वत पर जाकर निकलती है कहीं दूर लौं साँप और जोंक की तरह बलखाती हुई चली जाती है। जब पर्वत शिखर पर चढ़ जाती है तो नीचे की तरफ़ देखकर बड़ा भय लगता है- मालूम होता है अभी उलट-पुलट होकर चूर हो जाएगी पर धन्य मनुष बुद्धि को, कि चोटियों को भी चीर मार्ग निकाला है, इनको यहाँ की भाषा में टनल कहते हैं अर्थात सुरंग, दूर से देखने में यह एक छोटा-सा रंध्र दिखाई देता है जिसके अन्दर सूर्य का प्रकाश तो कभी गया ही नहीं। अंधकारछिन्न साँप की सी बाम्बी मालूम देती हैं जिसमें हमारी धूम्र वाहिनी बड़ी मंदर गम्भीर गति से निर्भय होकर घुस जाती हैं और एक मुहूर्त में उसे लाँघ दूसरे पर्वत पर पदार्पण करती हैं तब पीछे देखने से सुरंग मुँह से धुएँ के ग़ुबार के ग़ुबार निकलते दिखाई देते हैं, मानो पर्वत के उदर में अग्नि लग गयी हो, कहीं-कहीं वह टनल पर्वत गर्भ-विदीर्ण कर निकाली गयी है जिनके अन्दर प्रवेश करने से जान पड़ता था कि हम पृथ्वी तल से उठाए पाताल में ले जाए जा रहे हैं, किसी में पाँच मिनट किसी में दस गति करती हैं। ऊपर असंख्य मनों की शिलाओं का भार है जिसकी एक नोक का झड़ पड़ना हमारे जैसी दस गाड़ियों के चूर्ण कर डालने को काफ़ी है पर उसी के नीचे हम मनुष बुद्धि के बल से निर्भय जा रहे हैं।" ('लन्दन यात्रा', पृष्ठ-113) हरदेवी अपनी यात्रा के बारे में, रास्ते के प्राकृतिक सौन्दर्य के विषय में वर्णन करती हैं, ऐसा करते हुए उनकी भाषा काव्यात्मक हो जाती है। मसलन लन्दन की ओर जाते हुए रेल के रास्ते देखे स्विट्ज़रलैंड के मार्ग का वर्णन लिखती हैं -"बीच-बीच में कहीं-कहीं अँधेरी गहरी गुफा है जिनमें

Ajkal_October_2022.indd 16 27-09-2022 13:58:16

शेर और रीछादियों का वास स्थान मुँह फैलाये मानों दाढ़ें निकाल भक्षण करना चाहती हैं। ज़रा भी रौनक नहीं, चारों तरफ़ सुनसान, न जाने प्रकृति अथवा विधाता को क्यूँ इस सुरम्य-सुन्दर देश को बनाते-बनाते कोप आ गया अथवा थक गए होंगें, जो बीच में ऐसी भयानक रचना कर डाली।" ('लन्दन यात्रा', पृष्ठ-113)

स्पष्ट है विदेशी धरती जहाँ पढ़ी-लिखी कामकाजी स्त्रियाँ हैं, जो आत्मनिर्भर स्वाभिमानी हैं, कहें तो 'एनलाइटेंड' हैं, उनका सम्पर्क हरदेवी को अपने देश की स्त्रियों की दशा से तुलना करने का अवसर देता है और अवसर ही नहीं वह दृष्टि भी देता है जिसके सहारे वे अपने देश की स्त्रियों की दुर्दशा के कारणों की पड़ताल बहुत कड़े शब्दों में कर पाती हैं, "हमारे देश की बहुत-सी ऐसी स्त्रियाँ होंगी जिनके माता-पिता स्वामी धनी हैं, वे स्त्री धन के गर्व से घर का काम और पतिसेवा सन्तान-पालन, उनको शिक्षा देनी इन सब मुख्य कामों को दास-दासियों के अर्पन कर एक बड़े आलसी दारिद्री के समान पेट भर खाट पर लेट इस अमूल्य जीवनरत्न और उत्तम समय को निज हाथ से गँवाती हैं, देखो अति शोक स्थान है। हे भारतवासिनी प्यारी बहनों तुम्हारी सेवा में प्रार्थना करती हूँ विचारना चाहिए कि (उदरपरायणता) पेट भर के खाट पर लेट दिन रात गँवाना अमूल्य जीवनरत्न को वृथा हाथ से खोना स्त्रीजन्म का कर्त्तव्य नहीं कहा। देखो तुम्हारे ही बड़े कहते हैं (धर्म हीन नर पशु सम जानो) मनुषमात्र का मुख्य उद्देश्य तो धर्म ही है सो धर्म ग्रन्थों से प्रकट है पर स्त्रियों को यह नियम अवश्य ही करने चाहिए बालपन में माता-पिता से सुशिक्षा विद्या पढ़नी सीना-परोना (गृहचर्या) घर के काम सीखने उपरांत पतिसेवा तथा आज्ञा अनुकूलता नम्रता भाव भक्ति-आलस, कपट-छल का त्यागना, घर के सारे काम, घर का प्रबन्ध, सन्तान पालन, उन का शिक्षा प्रबन्ध, कुटुम्ब पालन, सम्बन्धियों का सत्कार करना, सच और मीठा बोलना, सत उपदेश सुनना, सत शास्त्र द्वारा आत्मा की शुद्धि और उन्नति करनी तथा ईश्वर आदेशों को यथासमय पालन करने में सावधान रहना, जैसे कि इस साध्वी धर्मरूपा के जीवनांश में पाए जाते हैं और इसी का उदाहरण तुम को उत्तम उदाहरण जानना चाहिए। तुमने यह सुना होगा। देखो हमारे देश की स्त्री को गृहकार्य वा सन्तान पालन से बिना और कोई काम नहीं तिस पर भी हम ऐसी हैं कि खाना और सोना दो ही काम जानती हैं। अब सावधानी से मेरी प्रार्थना सफल करें और धर्मोन्नति की ओर दृष्टि देकर भारतवर्ष की उन्नति करना भी हमारा परम धर्म है। तुमको वही नियम धारण करने चाहिए जो देशोन्नति के मूल कारण हैं। जब ऐसे सुराज्य में उन्नति न हुई तो कब होगी जिसमें अनेक भाषाओं से शिक्षा हो सकती है और उस का प्रबन्ध भी राज्य की ओर से उत्तम रीति द्वारा किया जाता है केवल हमारा ही आलस प्रतिबंधक हो रहा है इसका त्याग ही करना उचित है।" ('लन्दन यात्रा', पृष्ठ-62)

अपनी यात्रा के दौरान वे जिन लोगों से मिलती हैं, उनके बारे में विस्तार से लिखती हैं, यद्यपि पूरे यात्रा-वृत्तान्त में वे विस्तार से अपने परिवारजनों के नाम नहीं लेतीं जो उनके साथ यात्रा कर रहे थे, वे अक्सर 'हम' का प्रयोग करती हैं जिससे पता चलता है कि उन्होंने अकेले यात्रा नहीं की थी। उनकी लन्दन-यात्रा में उनके भाई सेवाराम और उनकी पत्नी साथ थे। बम्बई में वे दादा भाई नौरोजी के घर ठहरी थीं। लन्दन-यात्रा के एक महीने पहले, पूर्व तैयारी के लिए उनके भाई सेवाराम बम्बई पहुँचे थे। इस बारे में कहती हैं, "सन् 1886 के शुरू फ़रवरी महीने की नौ तारीख़ को हम सब लन्दन के लिए बॉम्बे को रवाना हुए। इस दिन बसन्त पंचमी थी। प्राताकाल नौ बजे बहुत से मित्र-रिश्तेदारों सहित स्टेशन पर पहुँचे। यहाँ बहुत-से स्त्री-पुरुषों की भीड़ इधर-उधर दौड़ रही थी। ---हमारे साथ इस विदेश की अंत विदा के वक़्त जो लोग यहाँ तक आए थे उन सबके नेत्रों से जल बह रहा था और हमारा मन भी प्यारी जन्म भूमि से चिरकाल के लिए बिछुड़ने से अनेक तरंगों उछल-उछल कर बाहर आ रहा था। यह पहला ही दिन था जब लाहौर से इतने दिनों की विदा ली। ग़र्ज़ इसी भाँति सबसे मिलकर घंटी बजने पर जल्दी से गाड़ी में सवार हुए। इतने में सीटी बजी जिसकी आवाज़ से मित्रों का मन और भी व्याकुल होय हमारे दर्शनों के लिए निराश हो गया-- अब हम पंजाब देश की सीमा में जा रहे हैं। हमारे साथ में खाने-पीने की ज़रा किसी को रुचि नहीं थी। सब के मन मलीन उदास हो रहे थे इसलिए यह दिन व्रत अर्थात उपवास में कटा। क्रमशः बियास सुतलज के पुल भी लाँघ गए। यहाँ रेल बड़ी धीमी गति से चलती है शहर ग्राम पुल बन बाग़ देखते हुए जो दृष्टि में चक्कर के समान घूम रहे थे। दिन बीत कर रात हो गई चारों तरफ़ अँधेरा हो गया। अब कुछ दिखाई न देता था। इस वक़्त सब ने आराम किया। सुना कि कल प्राता काल साढ़े आठ बजे गाड़ी देहली पहुँचेगी इसलिए सब बड़े तड़के तीन बजे से ही उठ कर तयार हो गए---" ('लन्दन यात्रा', पृष्ठ-4-7)

...बहुत-से पारसी मित्र जिनमें भाई सेवाराम भी थे, प्लेटफ़ार्म पर हमारी प्रतिक्षा कर रहे थे। यह हमसे एक महीना पहले यहाँ आ गए। देखते ही दौड़कर पिता के चरण पकड़ लिए और सब ख़ुशी-ख़ुशी बाहर गाड़ियों पर सवार होये नियत अस्थान तक हमें छोड़ गए (दादा भाई नौरोजी) एक पारसी मित्र की बड़ी सजी-सजाई कोठी। --(वही, पृष्ठ-13) आखर वह दिन भी आन पहुँचा जब हम विलायत के लिए यहाँ से जहाज़ पर सवार होए बारह मार्च की शाम पाँच बजे रसोई पकाने के बर्तन, गर्म मसाला, बड़ी पापड़ --यह सब असबाब प्राता दस बजे जहाज़ पर भेज दिया गया। अब सिर्फ़ हमारे साथ केबिन में रखने के छोटे-छोटे तीन-चार सन्दूक थे। इस दिन किसी ने अन्न जल ग्रहण नहीं किया। सब एक-दूसरे के बिछड़ने के वियोग में ही आतुर हो रोते रहे। प्यारे पिता तो स्वभावक ही सन्तान को बालक जान नित्त उन के राह में तत्पर रहते हैं। (वही, पृष्ठ-24) प्रिय पाठिका यह पैहला ही दिन था जब हमें मुँह खुले अंगरेज़ी स्त्री पुरूषों में खड़ा होना पड़ा। सब लोग आश्चर्य होय हमारी तरफ़ देखते थे और हम उनकी ग़र्ज़ सब कतार बाँध कर खड़े हुए और डाक्टर मुसकुराता हुआ सब के मुँह की तरफ़ देखता हुआ बीच से निकल गया। इसलिए कि यात्रियों में से कोई रोगी जिसे समुद्र में मृत्यु का भय हो तो डाक्टर देखकर लौटा देता है याने रूग्न मनुष्य को जहाज़ में नहीं चढ़ाते।" (वही, पृष्ठ-26)

हरदेवी अपनी लन्दन-यात्रा के अनुभवों की अगली कड़ी के रूप में 'लन्दन जुबली' (प्रकाशन 1888) लिखती हैं जिसकी सूचना 'लन्दन-यात्रा' के अंतिम पृष्ठ पर दे दी गई थी। उन्होंने बताया था कि वे अपने लन्दन प्रवास का ब्यौरा अगली पुस्तक में देंगी। 'लन्दन-यात्रा' के अंतिम अंश में हरदेवी लिखती हैं, "प्रिय पाठिकाओं धीर और संतोषवती रहो। कुछ दिन बाद लन्दन के विषय में भी अपना अनुभव तुम्हारी सेवा में निवेदन करूँगी अभी तो इस देश में हम नवागत विदेशी यहाँ की हर वस्तु से अपरिचित हैं कुछ नहीं जानते। नवजात बालक की तरहां हमारे लिए यह नई श्रृष्टि है पास इस लिए अब मैं प्रणाम कर कुछ दिनों के लिए तुम से विदा होती हूँ।" ('लन्दन यात्रा', पृष्ठ-131)

Ajkal_October_2022.indd 17 27-09-2022 13:58:16

'लन्दन जुबली' के मुखपृष्ठ पर लिखा है, "यह पुस्तक श्री हरदेवी ने देशीभाषा में रचकर भारतवासियों के लिए लन्दन से भेजा जिसको पंडित बंसीधर ड्राइंग मास्टर ओरिएंटल कॉलेज लाहौर ने शोधकर छपाया। न्यू इम्पीरियल प्रेस से सैय्यद रजब अली शाह के प्रबन्ध से छापा संवत 1945"। इस पुस्तक की 300 प्रतियाँ पहले संस्करण में छापी गईं। पुस्तक के अगले पृष्ठ पर महारानी विक्टोरिया का चित्र प्रकाशित किया गया है। प्रारम्भ में ही 'उपहार' शीर्षक से हरदेवी लिखती हैं, "जो वस्तुएँ अत्योत्तम और नबीन-नबीन रचना से लन्दनवासियों ने जुबली उत्सव पर जुबली नामक चिन्ह से बनाई थीं, सो वस्तुएँ जुबली उत्सव की प्रसन्नता में अपने प्रिय वर्ग को परसपर उपहारार्थ दी हैं, जिसका किंचित अनुकरण यह 'जुबली' नामक पुस्तक, जिसमें इस उत्सव का सम्पूर्ण वर्णन तथा श्रीमती महाराणी राजराजेश्वरी श्री विक्टोरिया के निज रचित पुस्तकों और उनके जीवनचरित्र में से भी किंचित लिख कर यह पुस्तक, उसी प्रकार अपने भारत निबासी पृयवर्ग को उपहार रूप अर्पण किया जाता है, अर्थात् जुबली भेंट की जाती है, विश्वास है, कि यदि पृयवर्ग अपने कर कमल में लेकर कृपावलोकन से एक बार पुस्तक, के देखन से किंचित भी आनन्दित होंगे तो यह श्रम सफल होगा, और मैं भी कृतकृत्य हूँगी।"

'लन्दन जुबली' में हरदेवी ने महारानी विक्टोरिया के जीवन-वृत्त का विस्तार से वर्णन किया है। विक्टोरिया के शासनकाल और उनके जुबली महोत्सव के अवसर पर लन्दन में होने वाले कार्यक्रमों की, आँखों-देखी रपट यात्रा-वृत्तान्त के इस खंड में है। जहाँ लन्दन-यात्रा कुल 131 पृष्ठों में है, वहीं 'लन्दन जुबली' 62 पृष्ठों में सिमट गया है। हरदेवी विक्टोरिया के शासन काल को आदर्श मानती हैं तथा स्त्रियों का डेपुटेशन जो जुबली के अवसर पर विक्टोरिया से मिलने गया उसके बारे में लिखती हैं, "हमारे विचार में यह उपहार सर्ब रत्नों से अधिक पृय होकर चिरकाल स्पर्धनीय होगा, यदि स्त्री समाज की ओर से इससे बढ़कर अपनी राजभक्ति दिखाने का और कौन-सा श्रेष्ठ अवसर उभय देश की स्त्रियों को मिलना था।" ('लन्दन जुबली', पृष्ठ-8)। साथ ही हरदेवी अपने भारतवासियों के अशिक्षित होने का संताप भी व्यक्त करती हैं कि इस अवसर पर भारतीय स्त्रियों की ओर से कोई उपहार महारानी की सेवा में नहीं भेजा गया। हरदेवी को कम-से-कम बंगाल की स्वचेतन स्त्रियों से इस उपेक्षा की आशा न थी। वे आगे लिखती हैं, "शोक है कि हिन्दुस्तान की स्त्रियों पर, जिन्होंनें थोड़ी भी श्रद्धा प्रकट न की और इस समय के प्रसाद से वंचित रहीं। हम को पूर्ण आशा थी कलकत्ता समाज की सुशिक्षित स्त्रियाँ पुन: बम्बई आदिक से अवश्य कोई इस समय के उपयुक्त चिन्हित वस्तु श्रीमती की सेवा में भेजेंगी। सो आशा निष्फल रही। परन्तु निश्चय है कि किसी दिन अशिक्षित समाज सुशिक्षित होकर इस राज्य को स्मरण करने योग्य होगा।" (वही) वे जुबली उत्सव के विषय में लिखती हैं, "परंच यह उत्सव इंग्लैण्ड के पूर्व तीन ही राजाओं ने देखा है, सो इतिहासों से प्रकट है, किन्तु आजतक किसी राणी महाराणी को प्राप्त नहीं हुआ सो बड़ी प्रसन्नता तथा आनन्द का समय है, कि ईश्वर कृपा से हमारी राजराजेश्वरी महाराणी श्री विक्टोरिया को न्यायपूर्वक राज्य करते जिसमें कोई विघ्न नहीं हुआ आज पचास वर्ष पूर्ण हुए और इक्यावन वर्ष के प्रथम दिन का प्रारंभ, जिसका उत्सव उभय देशों की प्रजा के मध्य बड़ी प्रसन्नता के साथ हो रहा है इस आनन्ददायक शुभ समय पर प्रजा ने अनेक रूपों में उदारता के साथ राजभक्ति प्रकट की और बहुत से परोपकारार्थ काम किए इसी के नाम से चिकित्सालय, विद्यालय, अनाथालय और देवालय, बनवाये गए जिनका फल यह है कि अनेक विद्यार्थी, अनाथ, अपाहिज, रोगी तथा निर्धन इत्यादिक का पालन होकर देश की चौगुणी उन्नति होगी और इसका नाम चिरकाल लोकों के हृदय में एक चन्द्रमा की भाँति सदैव प्रकाशित रहेगा और बहुत से दीन-दारिद्रियों जिनके कुटुम्ब सहित पालन होने की पूर्वोक्त स्थानों से सम्भावना है, वह लोग पूर्ण हृदय से श्रीमती की परिवार सहित पूर्ण कृपा दृष्टि से रक्षा कर, और मंगलपूर्वक दिनरात्रि इसका यश प्रताप बढ़ता रहे, इस राजकुल में नित जुबली उत्सव रहे।" (वही, पृष्ठ-6)

जुबली के अवसर पर लन्दन की रौनक़, राज्य की तैयारी, सुरक्षा व्यवस्था, महारानी विक्टोरिया की शाही सवारी के गुज़रने का मार्ग सबकुछ हरदेवी ने इस पुस्तक में लिखा है। जिसका यह अर्थ है कि जुबली उत्सव की सभी सूचनाओं पर अख़बारों के माध्यम से हरदेवी पैनी नज़र रख रही थीं। इसी वर्णन के दौरान वे भारत और लन्दन की तुलना भी करती हैं और आयोजन के सौन्दर्य का वर्णन खुले दिल से काफ़ी काव्यात्मक भाषा में करती हैं, "बाज़ार के कोनों, रेल के स्टेशनों, तथा बड़े-बड़े राजभवनों अर्थात् बैग, पिकचर, गैलरी, हास्पिटल, मियोज़ियम, लन्दनटावर, पारलेमेन्ट, आदिक और बहुत से चर्च तथा कालिज, स्कूलों पर बड़े-बड़े ऊँचे रेशमी झंडे जिन पर पूर्वोक्त प्रकार के स्वर्णाक्षरों में श्रीमती की तस्वीर सहित जुबली लिखा हुआ था, पवन से फहरा रहे थे, मानो श्रीमती के जुबली उत्सव पर हर्षित हो आकाश में नाचते थे, और सबको सूचना कराते थे, कि शीघ्र आओ इस जुबली उत्सव को देखो। ऐसा मंगलदायक समय फिर कब मिलेगा ! और यह पूर्वोक्त रचना केवल पूर्वोक्त स्थानों पर नहीं समझनी चाहिए, किन्तु लन्दन के प्रत्येक गली-कूचे-बाज़ार तथा प्रत्येक घर-वाटिका सहन राजभवन, पुल, इत्यादिक, इसी प्रकार इन पर भी यथासाध्य रचना की गयीं, और प्रतिघर जुबली मंगलाचरण था। कहीं जुबली गीत कहीं विविध प्रकार के बाजे मधुर स्वरों से बज रहे थे, किसी गली व बाज़ार में जाओ दरिद्र से दरिद्र का घर व दुकान इस शुभ चिन्ह से रहित न थी।" (वही, पृष्ठ-13)

हरदेवी के टेक्स्ट में उस समय की खड़ीबोली के स्वरूप का पता चलता है। पंजाब में आर्यसमाज के प्रभावस्वरूप उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ-साथ पंजाबी के शब्द हैं। 'भारत-भगिनी' के सम्पादकीयों में उर्दू के शब्दों का ख़ासा प्रयोग देखने में आता है। लन्दन में देखी इमारतों, पार्कों, सड़कों का चित्रण विस्तार में करती हैं, उनके स्थापत्य आदि के विषय में भी बताती चलती हैं। रास्ते में पड़ने वाले पुल, प्राकृतिक दृश्य सबका चित्रण करती हैं जिससे पता चलता है कि वे अपने अनुभवों को दूसरों तक पहुँचाने की जल्दी में हैं। ध्यातव्य यह भी है कि वे अपने भारतीय स्त्रियोचित पहनावे को लेकर कहीं-कहीं असुविधा का सामना तो करती हैं परन्तु कहीं भी कुंठित नहीं होतीं, वरन भारतीय परिधान उन्हें जब आकर्षण का केन्द्र बनाते हैं तो वे गौरवान्वित भी अनुभव करती हैं। वे अपने संस्मरण में पूर्व और पश्चिम की तुलना भी करती चलती हैं। वे लिखती हैं कि पश्चिम में बहुत लोग इकट्ठे हों तो भी शोर नहीं करते। मेले-ठेले में भी वे अनुशासन नहीं छोड़ते। वे पश्चिम की अच्छी आदतों और व्यवहार के प्रति प्रशंसा का भाव रखती हैं, उसकी सापेक्षता में भारत का पिछड़ापन उन्हें सालता है। मसलन वे

Ajkal_October_2022.indd 18 27-09-2022 13:58:16

लिखती हैं, "...यद्यपि करोड़ों मनुष्यों की भीड़ लन्दन में सब अस्थानों पर थी परन्तु हमारे देश की भाँति कहीं चिल्लाने व ऊँचे बोलने की आवाज़ सुनाई ना देती। सब अपने-अपने काम और ध्यान में चुपचाप शान्ति-भाव से विचर रहे थे, यदि कोई मित्र परस्पर बातें भी करते तो उतने ही शब्द से जिससे दूसरा उसका आशय समझ सके, परंच जूतों की आवाज़ प्राय: कुछ अधिक थी, सो हमारे असभ्य पुरुषों के मेलों के आगे हज़ारवाँ हिस्सा भी ना थी, किराए के निमित्त बस गाड़ी को हाथ उठा देने से आ जाएगी जिससे किराए की तकरार क्या नाम तक पूछने की आवश्यकता नहीं-सब मोटे अक्षरों में दोनों ओर लिखा है, बस चुपचाप बैठ जाओ जहाँ उतरना हो नियत किराया ले उतार दिए जाओगे, और न बाज़ारों में लोगों के हटाने को पोश-पोश करना पड़ता है, अर्थात यहाँ के मनुष्य चिल्लाना, शोर मचाना नहीं जानते ना आज तक कहीं देखा सुना गया।" ('लन्दन जुबली', पृष्ठ-31)

हरदेवी सत्ता में स्त्री की भागीदारी की ज़रूरत महसूस करती हैं। वे दर्ज करती हैं कि अधिकांश स्त्रियों को उनके जीवन का उद्देश्य ही मालूम नहीं है। अक्सर परिवारों में वे मूलभूत अधिकारों से वंचित रहती हैं। नवजागरण के दौर में कई आंदोलनों के सामने आने से मौलिकता एक आलोचनात्मक पद के रूप में विकसित हुई। इतिहास को देखने और इतिहास में शामिल होने योग्य विषयों की सारवस्तु बदली। हमने मौलिकता की सामाजिक भूमिका को देखना शुरू किया, साथ ही समाज को एक आलोचनात्मक दलील (क्रिटिकल आर्ग्युमेंट) के रूप में देखने की कोशिश भी। इस दौर के रचनाकारों में लोक-चिन्ता अपनी पूरी अकादमिक ईमानदारी के साथ दिखाई पड़ती है। इस लोक-चिन्ता के स्वरूप को दलील के रूप में देखे जाने की ज़रूरत है। आज की आलोचना इतिहास का सन्दर्भ (रेफ़रेंस) तो देती है लेकिन उसे 'प्रसंग' के रूप में इस्तेमाल नहीं करती। इतिहास आज कितने स्तरों पर संघर्ष करता है, उससे प्रसंग का निर्माण होता है। स्त्रियों के लिखे हुए को इतिहास से, अपने मूल्यांकन के लिए किन-किन स्तरों पर जूझना-टकराना पड़ता है, कैसे वे लिखकर प्रतिरोध की संस्कृति का निर्माण करती हैं, इससे ही 'प्रसंग' पैदा होता है। आज के युग का इतिहास जो एजेंडा देता है, रचनाकार उससे टकरा कर ही 'प्रसंग' का निर्माण कर सकता है। इतिहास ही नहीं इतिहास-लेखन की पूरी परम्परा से टकराती, उपेक्षित ये स्त्रियाँ क्या अपने लिखे हुए के पुनर्विश्लेषण की माँग नहीं करती हैं? हरदेवी के यात्रा-वृत्तान्तों को इतिहास की धारा में अपने हिस्से की कश्ती तलाशती स्त्री के प्रयास के रूप में देखा जाना चाहिए। ❑

चेतना और संवेदनशीलता...

पृष्ठ 8 से आगे...

निभाता है। व्यक्ति में से व्यक्ति निकलकर बराबर मंच पर आते चलते हैं और एक-दूसरे से उलझते हैं। एक ही व्यक्ति इस तरह विभिन्न रूपों में हमारे सामने आता है। हम पहचान भी लेते हैं लेकिन पहचान कर भी एकरसता की ऊब अनुभव नहीं करते, क्योंकि एक-दूसरे से उलझते एक ही व्यक्तित्व के ये अपने में स्वायत्त हिस्से इसका अवकाश हमें नहीं देते। हमारे सामने एक प्रश्नाकुल जिरह होती है। एक आग उगलता, झुलसाता समकाल, जिसे अक्सर हम स्थगित करते चलते हैं। मरुधर मृदुल अपने कवि-व्यक्ति को इस वास्तविकता के समक्ष पूरे होशोहवास में ला खड़ा करते हैं–

'आज मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूँ / सब चले गए हैं
मैं नितान्त अकेला / अपने सामने खड़ा हूँ।'

(वही, पृ-116)

यह अपने सामने नितान्त अकेले खड़ा होना किसी भी ईमानदार कवि-कर्म का प्रस्थान-बिन्दु है। न केवल मरुधर मृदुल बल्कि हर ईमानदार प्रगतिशील कवि के लिए यह मात्र एक आत्मसाक्षात्कार या आत्माभिज्ञान नहीं है। यह एक पूरी रचना-प्रक्रिया है या कि पूरी रचना-प्रक्रिया का सबसे अहम पड़ाव है।

दरअसल आत्मसाक्षात्कार या आत्माभिज्ञान की भी दो दिशाएँ हैं। इनमें एक दिशा तो यह है कि आप इस समय जो हैं उसे पूरी तरह जानें-पहचानें। अपने-आप को पूरी तरह जान-पहचान कर अपना कार्य-क्षेत्र और कार्य-सूची तय करें। ऐसा करते समय अपनी सीमाओं, परिस्थितियों, सुरक्षा आदि-आदि का भी पूरा-पूरा ध्यान रखें। इनका ध्यान रखा जाना आवश्यक है अन्यथा आप किसी अवांछित और प्रतिकूल स्थिति में भी जा फँस सकते हैं और आपकी दिनचर्या कष्टमय हो सकती है। अत: आप कोई जोखिम न उठाएँ और ज़िन्दगी को जैसी है वैसे आराम से चलने दें। यह एक यथास्थितिवादी जीवन-दृष्टि है।

मरुधर मृदुल जब नितान्त अकेले अपने सामने खड़े होते हैं तो जैसे एक बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं। यह मुश्किल आगे चलकर संघर्ष की दिशा और स्वरूप दोनों तय करती है। फिर इस सबसे उबर कर संघर्ष-यात्रा की असमाप्ति और निरन्तरता के अहसास की उपस्थिति का जो हवाला दिया है, वह इस मुश्किल का प्राण-तत्त्व है। यह कवि के समाजोन्मुख एवं समयोन्मुख आत्मसाक्षात्कार की ही उपलब्धि है। यह न केवल कवि के व्यक्तिवादी अकेलेपन को तोड़ता है बल्कि उसे एक आत्मविस्तार देता हुआ नितान्त प्रासंगिक भी बना देता है। मृदुल इस आत्मसाक्षात्कार की बदौलत ही अपनी दिनचर्या में समय की एक अबाध निरन्तरता महसूस कर पाए हैं। उनका वर्तमान अतीत से जुड़ जाता है और ये दोनों मिलकर आने वाले कल की सुखद सम्भावना उत्पन्न करने लगते हैं, 'आज मैंने उसे/ गए कल से जोड़ दिया/ आज के अकेलेपन को तोड़ दिया।/ और ऐसा होते ही/ मेरा आज/ आने वाले कल से जुड़कर/ सुहाना भोर हुआ/ अकेलेपन की यातना से/ छूटकर/ आनन्द विभोर हुआ'। (वही, पृ-140)। सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि ऐसा इसलिए हो पाया कि कवि अपनी मूल वैचारिक चेतना और संवेदनशीलता से निरन्तर नाभिनालबद्ध है। इस नाभिनालबद्धता ने इस कठिन समय में भी उसे मूलभूत चिन्ताओं से जोड़े रखा है। बावजूद तमाम दुविधा और अंतर्विरोध के, उसका व्यक्तित्व अखंडित रहता है 'एक तना है/ जो कट गया है बीच से/ पर जुड़ा है इसलिए/ कि जड़ अभी ज़मीन में है।' (वही, पृ-99)। ❑

Ajkal_October_2022.indd 19 27-09-2022 13:58:17

● लेख

प्रकाशचन्द्र गुप्त की हिन्दी आलोचना



अजेय पाण्डेय

'प्रतिमान' शब्द की अवधारणा का इतिहास 'कैनन' शब्द से ही विकसित होता हुआ हिन्दी में आया है। जिस प्रकार पश्चिम में 'कैनन' पर एक बहस की परम्परा रही है, हिन्दी में 'कैनन' पर बहस की उतनी परम्परा नहीं थी। हाँ, यह बात और है कि प्रतिमान गढ़ने की अप्रत्यक्ष परम्परा पर आधुनिक काल से एक बहस होती रही है, उसका सम्बन्ध 'कैनन' के निर्माण से शायद ही रहा है। यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि कोई रचना वाद या धारा कैनन में कैसे शामिल होती है। जब भी किसी रचना, रचनाकार, कालखंड, साहित्यिक वाद या धारा को कैननों के अंतर्गत स्थापित करते हैं तभी उन्हीं कैननों या मूल्यों पर बहस आगे बढ़ती है। तत्कालीन समय में उथल-पुथल मचाने वाले क्रान्तिकारी विचारों के प्रभाव में इंग्लैंड के प्रमुख आलोचक टेरी ईगल्टन ने 1976 ईस्वी में 'मार्क्सिज़्म एंड लिटरेरी क्रिटिसिज़्म' तथा 1983 ईस्वी में 'लिटरेरी थ्योरी एंड इंट्रोडक्शन' अपनी प्रकाशित पुस्तकों में मार्क्सवादी विचारधारा के समस्त आयामों पर आलोचकीय दृष्टि डाली, अपने नए चिन्तन और मूल्यांकन की सृष्टि कर एक प्रतिबद्ध आलोचक की तरह मार्क्सवादी आलोचना के प्रतिमानों के आधार पर अपने मत को स्थापित किया। जिन मुद्दों के सन्दर्भ में मार्क्स के समकालीन और परवर्ती पीढ़ी के आलोचकों ने बहस जारी रखा था, उसी से निकल कर आ रहे प्रतिमानों के तहत मार्क्सवादी विचारधारा को देखने का प्रयास हिन्दी के प्रमुख आलोचकों–शिवदान सिंह चौहान, शिवकुमार मिश्र, मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, कमला प्रसाद, नामवर सिंह, मैनेजर पांडेय अन्यादि ने भी किया। प्रतिमानों को ध्यान में रखकर अनेक आलोचना पुस्तकें लिखीं परन्तु यदि इन आलोचकों के सन्दर्भ में संगोष्ठियों में चर्चा-परिचर्चा की बात की जाए तो उसमें सदैव प्रकाशचन्द्र गुप्त के आलोचना साहित्य की उपेक्षा ही हुई, जब कि उन्होंने भी मार्क्सवादी आलोचना के प्रतिमानों पर चर्चा कर अन्य मार्क्सवादी आलोचकों की तरह हिन्दी आलोचना के पाठकों की लिए मार्ग प्रशस्त करने का कार्य किया। उन्होंने आलोचकीय परम्परा को आगे बढ़ाते हुए अपने ज्ञान विवेक से साहित्य के उद्देश्य, इतिहास दृष्टि, समाज अर्थात् कला और लेखक की प्रतिबद्धता, द्वन्द्व तथा कला के प्रश्न पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तौर पर विचार व्यक्त किए कि, किस प्रकार एक मार्क्सवादी आलोचक इतिहास को, कला को और विज्ञान को मानव की सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रखकर देखता है। ऐसे में मार्क्सवादी आलोचना के क्रमवार उक्त प्रतिमानों के सन्दर्भ में प्रकाशचन्द्र गुप्त के आलोचना साहित्य पर बात करना आवश्यक प्रतीत होता है।

"कुछ रचनाएँ जिनका सन्देश जीवन के प्रति न होकर मरण के प्रति था, उसे भी साहित्य की श्रेणी में रखा गया। ऐसी रचनाओं की भावना और विचारधारा उदात्त है, समाज को जीवन और आगे बढ़ने की शक्ति प्रदान करती है। इन रचनाओं में कला को लेखक के जीवन-दर्शन से बल मिला है। भले ही भावना और विचार उच्च नहीं हों, परन्तु कभी-कभी यही भावना और विचार अपने नए प्रयोग और कला से जीवन को नया मार्ग प्रदान करती है, जहाँ से जीवन की दिशा और दशा दोनों बदल जाते हैं।"

साहित्य किन-किन उद्देश्यों की पूर्ति कर रहा है, इन सबको जानने के लिए हमें साहित्य की संवेदना, भाव, अनुभूति तथा उसकी अभिव्यक्ति का सौन्दर्य और उससे से प्राप्त आनन्दानुभूति, समाज का मार्ग प्रशस्त करने वाली क्रान्तिकारी विचारधारा जैसी अंतर्वस्तु को समझने के साथ-साथ खोजना होगा। यदि ये सभी तत्त्व किसी रचना में उपलब्ध होते हैं तो वह रचना साहित्य के रूप में आ जाती है। प्रकाशचन्द्र गुप्त की नज़र में साहित्य का उद्देश्य समाज सापेक्ष होने के साथ-साथ मानव केन्द्रित होना चाहिए। साहित्य का रूप चाहे जैसा भी हो उसकी अंतर्वस्तु और उसके सौन्दर्यबोध में मानव को आनन्द की अनुभूति कराने वाले कारक होने चाहिए, भले ही रूप का स्तर अमूर्त हो, फिर भी यथार्थ प्रतिबिम्बित होना चाहिए। असल में मार्क्स और उनके साथियों की मंशा भी यही थी।

कुछ रचनाएँ जिनका सन्देश जीवन के प्रति न होकर मरण के प्रति था, उसे भी साहित्य की श्रेणी में रखा गया। ऐसी रचनाओं की भावना और विचारधारा उदात्त है, समाज को जीवन और आगे बढ़ने की शक्ति प्रदान करती है। इन रचनाओं में कला को लेखक के जीवन-दर्शन से बल मिला है। भले ही भावना और विचार उच्च नहीं हों, परन्तु कभी-कभी यही भावना और विचार अपने नए प्रयोग और कला से जीवन को नया मार्ग प्रदान करती है, जहाँ से जीवन की दिशा और दशा दोनों बदल जाते हैं। तत्कालीन युगीनबोध और रुचि पर भी रचना का सृजन निर्भर

सम्पर्क : मो. 8318621600, ई-मेल : pandeyajay5@gmail.com

Ajkal_October_2022.indd 20 27-09-2022 13:58:17

करता है। ऐसे साहित्य को हम कूड़ा नहीं कह सकते। बहरहाल यह सही बात है कि साहित्य की भावना और विचार उच्च होने चाहिए जो समाज को सदैव सकारात्मक दिशा प्रदान करें। जिस समय का साहित्य हो उसी समय के मापदंडों पर परखा जाना चाहिए। आज का साहित्य न तो प्लेटो या अरस्तु के और न ही भरतमुनि, भामह, राजशेखर, मम्मट के मापदंडों से आँका जाए। जिस प्रकार मानव को केन्द्र में रखकर नए समाज, नवीन पर्यावरण तथा नवीन साहित्य तैयार होता है, उसके मूल्यांकन के लिए भी नवीन दृष्टि की आवश्यकता होती है। हाँ, यह बात भी ज़रूरी है कि पुराने को संशोधित कर प्रयोजनीय बनाया जाना चाहिए। पुरानी दृष्टि की ही देन है कि अल्प समय में हिन्दी आलोचना प्रौढ़ हो गई। स्वस्थ तथा सफल आलोचना का भी यही मानदंड है कि जिस युग का साहित्य हो उसी समय के समाज सापेक्ष देखा जाना चाहिए।

प्रकाशचन्द्र गुप्त साहित्य की आलोचना की सफलता पर विचार करते हुए लिखते हैं, "युग विशेष का साहित्य प्राचीन परम्परा को आगे बढ़ाते हुए भी अपना विशेष अस्तित्व रखता है, उसका विचार-दर्शन, भाव-जगत, शैली, उपमाएँ आदि सभी कुछ अपनी विशेषताएँ रखते हैं। इसी साहित्य में उसकी परीक्षा के मानक भी निहित मिलेंगे। समर्थ आलोचक इन्हीं मूल्यों को खोजता है। सफल आलोचना के लिए एक वैज्ञानिक दृष्टि की आवश्यकता होती है। आलोचक न केवल साहित्य के बहिरंग-रूप, रस, गन्ध की परीक्षा करता है वरन् उसके प्राण-भावों और विचारों से भी परिचित होना चाहता है। इन सब का अंतरंग सम्बन्ध होता है। साहित्य की भावनाओं और विचारधारा के अनुरूप उसका बाह्य स्वरूप भी निर्मित होता है। भाषा, उपमाएँ, शब्दचित्र सभी पर साहित्य के प्राण की छाप रहती है। साहित्य युग की परिस्थितियों के अनुरूप बदलता है और अपने काल की मन:स्थितियों का प्रतिनिधि होता है। वैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण हिन्दी आलोचकों में बढ़ रहा है किन्तु अभी तक इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इतिहास की विवेचना नहीं के बराबर हुई है। साहित्य का रूप-रंग किस कालखंड में या किन परिस्थितियों में प्रगतिशील बना इसे जानने के लिए उस कालखंड का वैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन करना होगा। हालाँकि पिछले दो-तीन दशकों से आलोचक जब किसी काल विशेष का अध्ययन करते हैं तो उस काल की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दशाओं का भी आकलन करते हैं। इसी से उस काल विशेष की विचारधाराओं और भाव-जगत को आसानी से समझ सकते हैं। सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं के केन्द्र में मनुष्य होता है, उसी के लिए समस्त व्यवस्था बनती है, ऐसे में बग़ैर मनुष्य को केन्द्र में रखे उस कालखंड के साहित्य का वास्तविक अध्ययन सम्भव ही नहीं है, भले ही साहित्य का रूप और अंतर्वस्तु कैसी भी हो। इसलिए मार्क्सवादी आलोचक हिन्दी साहित्य की आलोचना को मानव केन्द्रित होने पर बल देते हैं। वे मानते हैं कि साहित्य समाज और राजनीति को प्रभावित करता है।

आज की आवश्यकता है कि साहित्य मानव केन्द्रित उच्च भावना और विचारों को साथ लेकर चले, समाज के लिए प्रगतिगामी साबित हो। इस साहित्यिक विशेषता की पहचान आलोचना जगत में मार्क्सवादी आलोचना ने ही किया। साहित्य की अंतर्वस्तु को कुरेद-कुरेद कर उसकी सूक्ष्मतम अनुभूतियों, विचारों और भावनाओं में निहित दर्शन की विवेचना कर प्रकाश में लाने का प्रयास किया। यह आलोचना धारा साहित्य और समाज में सुन्दर सम्बन्ध स्थापित करती है ताकि साहित्य को उसके लक्ष्य तक पहुँचाया जा सके।

बग़ैर इतिहास दृष्टि के विकास के आधुनिक और वैज्ञानिक दृष्टि का विकास असम्भव है। जब तक हम इतिहास को बदलते रूप में मानव और उत्पादन के साधनों के मध्य सम्बन्ध की पड़ताल नहीं करेंगे तब तक किसी भी विषय पर इतिहास दृष्टि भी विकसित हो पाना असम्भव है। समाज की आवश्यकता के कारण उत्पादन और उसके साधन परिवर्तित होने के साथ-साथ समाज और विचारधारा भी बदलने लगती है। इसलिए ही मार्क्स और एंगेल्स का मत था कि आर्थिक शक्तियाँ ही लोगों का निर्माण करती हैं। लोगों के निर्माण में आ रहे बदलाव की पड़ताल किए बग़ैर सही रूप में इतिहास-दृष्टि कैसे विकसित हो सकती है ! सही इतिहास-दृष्टि के लिए उसकी परम्परा के अंतिम छोर तक जाना होगा और उस परम्परा के प्रगतिशील तत्त्वों को अपनाना भी होगा क्योंकि उस समय के सिद्धांत, विचार कहीं-न-कहीं आधुनिक दृष्टि या इतिहास दृष्टि को एक जीवनी शक्ति प्रदान करते हैं। यह बात और है कि सदैव के लिए कोई भी सिद्धांत, विचार प्रगतिशील और जीवनदायी नहीं बने रह सकते हैं। नए सिद्धांत और विचार जो जनहित में होते हैं, अपने स्वरूप में प्रगतिशील और जीवनदायी ही होते हैं, पुराने सिद्धांत, विचार का स्थान ले लेते हैं।

प्रकाशजी लिखते हैं, "पूँजीवाद अपने अभ्युदय काल में एक क्रान्तिकारी शक्ति था, उस युग का साहित्य भी क्रान्तिकारी साहित्य था। आज पूँजीवाद के सिद्धांत और आदर्श अपनी शक्ति खो चुके हैं और नए विचार और सिद्धांत उनका स्थान ले रहे हैं। आवश्यक आधुनिक हिन्दी साहित्य अपनी समस्त प्रगतिशील परम्परा को सहेजकर आगे बढ़े। सभी कुछ प्राचीन आज भी जैसा का तैसा अनुकरण योग्य है यह मानना असम्भव है। हमें भारतीय संस्कृति के इतिहास का एक उदार दृष्टिकोण से अध्ययन करना होगा। तुलसी, सूर अथवा कबीर की मानवतावादी परम्परा से हम प्रेरणा ग्रहण करते हैं, किन्तु उनके विचारों को आज भी विवेचना के बग़ैर ज्यों-का-त्यों ग्रहण नहीं कर सकते। गुप्तजी के उक्त कथन की सहमति हो सकती है। इसीलिए तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के साहित्य-लेखन को हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य चुनौती देते रहता है। परम्परा और उसकी प्रगतिशीलता को अपने साहित्य मूल्यांकन हजारी बाबू साथ लेकर चलते हैं, यहीं पर आचार्य शुक्ल थोड़ा चूक जाते हैं।

समाज का निर्माण मानव, जीव-जन्तु या जानवर तथा प्रकृति की परस्पर क्रिया से होता है चाहे वह आर्थिक हो या सामाजिक। समाज को सही स्वरूप मानव ही देता है। जीवन शैली, अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा का निर्माण करता है। समाज का प्रकृति और मानव के परस्पर सम्बन्ध को ही स्पष्ट करने के लिए मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद सिद्धांत को विकसित किया। स्वस्थ मानव समाज के लिए वर्ग-संघर्ष और अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत पर भी बात करते हैं जहाँ पर उत्पादन वितरण और साधन पर समान अधिकार हो और आवश्यकता के अनुसार समाज लाभान्वित भी हो। यहीं सर्वहारा के अधिनायकत्व पर भी चर्चा आवश्यक है।

समाज के निर्माण में विचार एवं सिद्धांत की बड़ी भूमिका होती

Ajkal_October_2022.indd 21 27-09-2022 13:58:17

है। जिस प्रकार जीवन की परिस्थितियाँ होंगी वैसे ही विचार एवं सिद्धांत बनेंगे। आदिम समाज में सब कुछ सामूहिक होता था, हालाँकि पूँजीवादी समाज में सब कुछ व्यक्तिवादी हो गया। आदिम समाज का हर निर्णय उनकी सामूहिक भावनाओं का प्रतिफलन होता था। मार्क्स, वर्ग हो या उसका श्रम, उसमें विभाजन नहीं चाहता था, क्योंकि विभाजन ही शासक वर्ग को उत्पन्न करता है। जब भी शासन का अधिकार उत्पादन और उसके साधन पर हो जाएगा तब श्रमिक की सम्पत्ति शासन करने वाले के पास चली जाएगी। इससे प्रगतिशील तत्त्वों का विकास होता है। तभी नागरिक अपनी प्रतिभा शक्ति को दिखाने का अवसर प्राप्त करता है।

“वर्गों में बँटे समाज ने कला को भी दो वर्गों में बाँट दिया। एक वो कला जो शासक वर्ग की है, निखरी हुई चमकदार क्योंकि उनके द्वारा शासित देश का उन्नत तकनीक जानकार वर्ग होता है। दूसरी वो कला जिसमें चमक और निखार नहीं होता, आडम्बर के रंग नहीं भरे होते, क्योंकि इसका कलाकार उन्नत तकनीक शिक्षा से दूर रहता है। इनकी कला में जो ऊबड़-खाबड़ दिखता है उसमें अपनी संस्कृति, अपने समाज का असल रूप होता है। इसी को हम लोक संस्कृति के रूप में जानते हैं। वर्ग कला को इतिहास के कालखंडों में हम बाँटकर देखते हैं ताकि यह समझ सकें कि किस कालखंड के कला में संवेदना कितने और किस रूप में, किस स्तर तक विद्यमान थी ?”

साहित्य की अंतर्वस्तु में समाज होगा, प्राणी जगत होगा। उनकी समस्याएँ भी होंगी, सांस्कृतिक विरासत भी सँजोए जाने का प्रयास भी होगा, संस्कृति की संवाहिका भी होगी। जैसे-जैसे समाज और उसकी संस्कृति बदलेगी, साहित्य का स्वरूप भी बदलेगा, इस दौरान विचारों में भिन्नता भी देखने को मिलेगी, उनकी अलग-अलग धाराएँ भी देखने को मिलेंगी। किसी विचारधारा के साहित्यकार सर्वहारा वर्ग को अपने साहित्य के केन्द्र में रखेंगे, यथार्थ तरीके से चित्रित करेंगे। किसी विचारधारा के साहित्यकार समाज के सभी वर्ग के समस्याओं को चित्रित तो करेंगे, परन्तु आदर्शवादी बने रहेंगे। इसी बात पर प्रकाशचन्द्र गुप्त लिखते हैं, “पन्तजी का, आध्यात्मवाद और भगवतीचरण वर्मा का श्रमजीवी संगठन पर कोप शाश्वत सत्य न होकर आज के शासक वर्ग की संस्कृति के संकट की सूचना है। पिछले काल में यह दोनों कलाकार सर्वहारा से सहानुभूति प्रकट करते थे, किन्तु संघर्ष की तीव्रता ने एक को अलग हटने और दूसरे को प्रत्याक्रमण के लिए मजबूर किया।” बहरहाल साहित्य में जब संक्रमण काल आता है तो अनेक विचारधाराओं का विकास हो जाता है। आज के समाज में कम ही लेखक हैं जो स्वतन्त्र होकर लेखन कार्य कर रहे हैं क्योंकि ये किसी व्यवस्था या संस्था के दबाव में नहीं रहते हैं।

प्रतिबद्धता समाज में बदलाव लाने वाले, निर्भीकता के साथ क्रान्तिकारी लेखन की पक्षधर है। सभी युगों में तत्कालीन दौर की आर्थिक और सामाजिक दशाएँ अपेक्षा कर रही थीं साहित्य से कि वह प्रतिबद्धता दिखाकर समाज के ग़लत या सही पक्ष को उजागर करे। जैसाकि माना जाता है साहित्य को समाज की समस्याओं के यथार्थ अंकन के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए, इसीलिए अपेक्षा भी बढ़ जाती है। आलोचकों को भी किसी रचनाकार के साहित्य को परखते समय अपनी स्वस्थ आलोचना के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए। केवल रचना के बाह्य स्वरूप या रूपरेखा पर ही अपना समस्त ध्यान केन्द्रित नहीं करना चाहिए, बल्कि उसके भीतर की कला और सन्देश को भी जानना चाहिए। वह किन विचारों, भावनाओं को सामने लाना चाहता है, कहाँ तक उसे आगे ले आने में सफल हो पाता है, इन सभी बिन्दुओं पर आलोचक को विचार करना चाहिए। किसी विचारधारा का प्रचार यदि साहित्य के माध्यम से होता है तो यदि हम उसे प्रचार साहित्य समझ लें तो हमारी आलोचना की असफलता होगी। जब कोई विचारधारा आगे बढ़ेगी तो उस विचारधारा का प्रचार स्वाभाविक होगा। प्रकाशचन्द्र गुप्त लिखते हैं, “प्रचार तो सभी कला में रहता है, क्योंकि जहाँ विचार है, वहीं प्रचार है। कलाकार को निश्चय यह करना है कि किन विचारों का प्रचार वह करेगा, टूटती समाज-सत्ता के विचारों का, ह्रासोन्मुख शासक-वर्ग के विचारों का अथवा नव-निर्माण की ओर उन्मुख क्रान्तिकारी जन-समाज के विचारों का ? यदि वह विवेकशील प्रचारक है तो ‘War and Peace’, जैसा कुछ लिखेगा। यदि वह प्रचलित श्रेणी का प्रचारक है तो आदर्शवादी विचार-दर्शन अपनाकर भी कुछ न कर सकेगा। वह ‘गोदान’, ‘ग्राम्या’, ‘माँ’, ‘कैलेवरी की सड़क’, ‘पीकिंग का पल’ लिख सकता है, यदि उसमें प्रतिभा नहीं है, तो उसका प्रचार केवल नारेबाज़ी होगा।” मार्क्स भी कहते हैं कि किसी पार्टीगत विचारधारा को साहित्य में लाना पूर्णतया अनुचित नहीं है, लेकिन साहित्य का उद्देश्य वही नहीं होना चाहिए। अत: रचनाकार की यह प्रतिबद्धता होनी चाहिए कि साहित्य में समाज की समस्याओं का यथार्थ अंकन हो, व्यक्तिगत विचारों का प्रचार करने के लिए समस्याओं को हाशिये पर न धकेला जाए। साहित्य का तत्त्व मानव केन्द्रित विकासोन्मुख बनाए जाने तथा वैज्ञानिक कसौटियों पर कसे जाने की प्रतिबद्धता साहित्यकार और आलोचकों की होनी चाहिए। जब भी किसी देश की शासन व्यवस्था देश की समस्याओं को हल करने में अक्षम साबित होने लगे तो ऐसे में साहित्यकारों को आगे आकर समस्याओं का समाधान देने में भूमिका निभानी चाहिए तथा शासन-व्यवस्था को एक प्रगतिशील और उन्नत राह दिखाकर अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त करना चाहिए।

दो या दो से अधिक लोगों, पदार्थों, मूल्यों, सिद्धांतों एवं विचारों के मध्य संघर्ष का परिणाम है द्वन्द्व। द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया का परिणाम है सृष्टि का सृजन और प्रलय, ब्रह्मांड, ग्रह, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, जिनका जन्म संघर्षों का परिणाम है। जब दो सिद्धांतों या विचारों में संघर्ष होता है तो एक नया सिद्धांत और विचार जन्म लेता है। चाहे संसार का निर्माण और विकास हो या विचारधारा का परिवर्तन हो, विरोधात्मक पदार्थों एवं प्रत्ययों से हुआ है। इसी द्वन्द्व के आधार पर ही साहित्य के कालखंड को विभाजित करते हैं। जब कोई विशेष प्रवृत्ति नष्ट होती है तो नई प्रवृत्ति का विकास होता है। तब साहित्यधारा, कालखंड, विचारधारा सब बदल जाता है। प्रकाशचन्द्र गुप्त लिखते हैं, “वर्ग कला का विकास एक समान नहीं होता है। इसमें उत्थान और पतन, प्रगति और ह्रास के क्षण होते हैं। जब पुराने युग का अस्त और नए युग का उदय होता है, तो कला भी इन दो रूपों में प्रकट होती है। कला का एक रूप प्राचीन

Ajkal_October_2022.indd 22 27-09-2022 13:58:17

के साथ जुड़ा होता है और उसमें ह्रास के सब लक्षण प्रकट होते हैं; दूसरा रूप नवीन के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ता है और प्रगति का पथ अपनाता है।"

कला-सम्बन्धी कुछ प्रश्न सभी पाठकों के मन में उभरते हैं जैसे- कला का मूल्य क्या होना चाहिए ? कला की अभिव्यक्ति में किस विषय की प्रधानता होनी चाहिए ? कला का अर्थव्यवस्था से किस प्रकार का सम्बन्ध है ? कला किस रूप में विचारों को आगे बढ़ाती है, सभ्यता या संस्कृति के रूप में या संघर्ष के रूप में ? कला भी क्या वर्गों में विभाजित होती है ? सच्ची कला और छद्म कला के बीच अंतर करने वाले तत्त्वों को किन कसौटियों पर कसकर पहचानेंगे ? कला आंदोलनों या क्रान्ति में कहाँ तक भूमिका निभा पाती है ? इन सारे प्रश्नों के उत्तर पर अनेक गोष्ठियों में चर्चा करते हुए मार्क्स और एंगेल्स जो टिप्पणी करते हैं, उसी से प्राप्त होते हैं। इन्हीं टिप्पणियों को माध्यम बनाकर हिन्दी आलोचक देश, काल के परिप्रेक्ष्य में विचार करते हुए आलोचना को आगे बढ़ाते हैं। प्रकाशचन्द्र गुप्त लिखते हैं, "कला का कोई शाश्वत, चिर-अपरिवर्तित रूप नहीं होता है। अनेक युगों, जातियों और वर्गों में इसके अनेक रूप होते हैं, जो सतत् परिवर्तनशील हैं। आदिम काल में मनुष्य अपने सौन्दर्यबोध से अपनी गुफा की दीवार सजाता था, जानवरों का शिकार करता था, उनके चित्र बनाता था, प्रकृति के देवताओं को प्रसन्न करने के लिए गीत गाता था। इस आदिम समाज में वर्ग भेद न था और इस कला में भी विच्छिन्न एकता थी। पूरा समाज इस कला में भाग लेता था।"

"कलाकार जब वर्ग परम्परा से मुक्त हुआ तो कला ने भी स्वतन्त्रता पाई, और आगे चलकर समाज चेतना, नवीन सौन्दर्यबोध को अपनाया जिसमें कलाकार अपनी कला के माध्यम से अपने अंतरतम को भी निकाल कर रख देता है। ऐसे में संवेदना और भावना दोनों का स्तर उच्च हो जाता है, क्योंकि अब उसकी कला में मनुष्य होता है, पूँजीवादी सोच नहीं। तब जाकर कला जीवन के साथ संघर्ष में मनुष्य का हथियार बनती है।"

वर्गों में बँटे समाज ने कला को भी दो वर्गों में बाँट दिया। एक वो कला जो शासक वर्ग की है, निखरी हुई चमकदार क्योंकि उनके द्वारा शासित देश का उन्नत तकनीक जानकार वर्ग होता है। दूसरी वो कला जिसमें चमक और निखार नहीं होता, आडम्बर के रंग नहीं भरे होते, क्योंकि इसका कलाकार उन्नत तकनीक शिक्षा से दूर रहता है। इनकी कला में जो ऊबड़-खाबड़ दिखता है उसमें अपनी संस्कृति, अपने समाज का असल रूप होता है। इसी को हम लोक संस्कृति के रूप में जानते हैं। वर्ग कला को इतिहास के कालखंडों में हम बाँटकर देखते हैं ताकि यह समझ सकें कि किस कालखंड के कला में संवेदना कितने और किस रूप में, किस स्तर तक विद्यमान थी ? जो कला समाजवादी होती है उसमें पूरे समाज के यथार्थ का अंकन होता है। इसी कला में मनुष्य की सुन्दर, भावपरक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति मिलती है, मनुष्य की संवेदना और भावना का उच्च स्तर दिखता है, जिससे क्रान्ति जन्म लेती है। कला हमारी सभ्यता और संस्कृति-सम्बन्धी विचारों को प्रसारित कर हमारे संघर्षों को गति प्रदान करती है।

कला का सम्बन्ध जैसे ही अर्थव्यवस्था या पूँजी से जुड़ता है, उसकी भरपूर क़ीमत वसूल ली जाती है, भले ही उस कला में विलासितापूर्ण सामग्री और अश्लीलता को परोसना पड़े। कलाकार को धीरे-धीरे यही कला निराशा, व्यक्तिवाद, अहंवाद की ओर धकेल देती है। समाज को बाँटने, साम्प्रदायिकता को विस्तारित करने, नागरिकों की मानसिकता को दूषित करने की मनोवृत्तियों को जन्म और बढ़ावा भी देती है। इसी प्रकार की कला एक सच्ची कला को उभरने नहीं देती है, क्रान्तिकारी कलाकारों को दमन, दबाव का शिकार होना पड़ता है। ऐसे में कला पर प्रश्नचिह्न लग जाता है कि आख़िर मानव को केन्द्र में रखने वाली कौन-सी कला सच्ची है या छद्म है, अब समझना आसान नहीं रहा।

कलाकार जब वर्ग परम्परा से मुक्त हुआ तो कला ने भी स्वतन्त्रता पाई, और आगे चलकर समाज चेतना, नवीन सौन्दर्यबोध को अपनाया जिसमें कलाकार अपनी कला के माध्यम से अपने अंतरतम को भी निकाल कर रख देता है। ऐसे में संवेदना और भावना दोनों का स्तर उच्च हो जाता है, क्योंकि अब उसकी कला में मनुष्य होता है, पूँजीवादी सोच नहीं। तब जाकर कला जीवन के साथ संघर्ष में मनुष्य का हथियार बनती है। आज की कलात्मक रचनाओं के पीछे युगीन संघर्षों के प्रयास और साधना की परम्परा हैं। मार्क्सवादी आलोचना कला को उसकी सामाजिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रखकर देखने की पक्षधर है। वह बताती है कि कला का चाहे रूप हो या प्राण (अंतर्वस्तु) दोनों पर ऐतिहासिक और सामाजिक प्रभाव पड़ता है। कलाकार की रचना के पीछे के प्रेरणास्रोत के रूप में चारों तरफ़ की सामाजिक जीवन की गतिविधियाँ हैं, जिनको केन्द्र में रखकर यथार्थवादी कला रची जाती है।

अब बात कला और साहित्य के मध्य सम्बन्ध की। कला, साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंश है जिसके महत्व और अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता है। कला के बग़ैर न तो साहित्य पूर्ण हो सकता है और न साहित्य के बग़ैर कला। यूँ कहें तो किसी रचना की देह कला है और आत्मा साहित्य है। साहित्य को बिम्ब, प्रतीक, मुहावरे, शैलियाँ, वर्णिक एवं शाब्दिक लय, विचार जैसी कलात्मक तत्त्वों का सहारा मिलता है तो और निखर कर सामने आता है तो लोगों की स्मृति में समा जाती है। यही साहित्य का सौन्दर्य विधायक तत्त्व भी है। प्रगतिशील आलोचना का एक पक्ष यह भी है, जिसे महत्व दिया जाना चाहिए।

भले ही हिन्दी पाठक मार्क्सवादी आलोचना के प्रतिमानों की कसौटियों पर शिवदान सिंह चौहान, शिवकुमार मिश्र, कमला प्रसाद, रामविलास शर्मा, कमला प्रसाद, मुक्तिबोध, नामवर सिंह तथा मैनेजर पांडेय अन्यादि के आलोचना साहित्य को कमोबेश खरा पाते हों, परन्तु प्रकाशचन्द्र गुप्त का आलोचना साहित्य भी उक्त प्रतिमानों पर कम खरा नहीं पड़ता है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि किसी प्रतिमान को व्यापकता या प्रतिष्ठा मिलती है तो सभी आलोचकों का योगदान होता है। मार्क्स के समस्त रचनात्मक साहित्यिक कार्यों को एक श्रेष्ठ स्थान पर प्रतिष्ठित करने के उपक्रम में आलोचकों द्वारा जो मान या प्रतिमान निर्माण किया गया है, उन्हीं प्रतिमानों पर प्रकाशचन्द्र गुप्त अपने आलोचना साहित्य में विस्तार से बात करते हैं और प्रमाणित भी करते हैं। ❑

Ajkal_October_2022.indd 23 27-09-2022 13:58:18

● कहानी

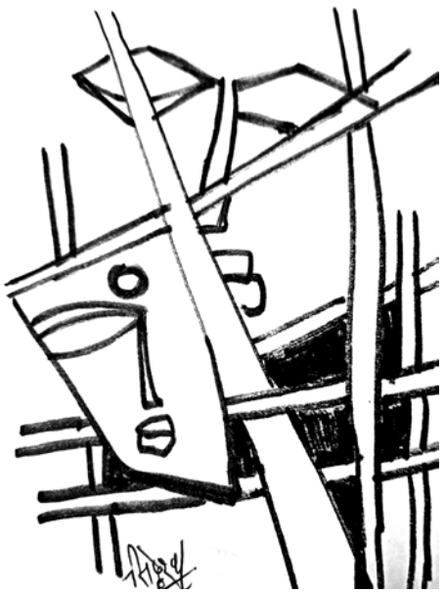


फ़ोर्ड वाले मामा

सुषमा मुनीन्द्र

छियासठ वर्षीय वृहस्पति मामा नहीं रहे। चारी (पैतृक गाँव) के अनगढ़ कच्चे घर के आँगन में गोबर लीपी भूमि पर निस्पन्द पड़े हैं फिर भी विश्वास नहीं होता मामा नहीं रहे। उनके अधर पतली दरार की तरह खुले हैं। जैसे कहना चाहते हैं मुझसे अच्छा कार चलाने वाला न कोई हुआ है, न होगा।

मामा का वाहन-प्रेम जगत प्रसिद्ध न सही चारी प्रसिद्ध ज़रूर रहा। मैं उन्हें उनके काले कोट और प्राचीन फ़ोर्ड कार से जुदा रख कर कभी नहीं देख पाया। नानी बताती थीं, "बिहफँय (मामा वृहस्पतिवार को जन्मे थे। अत: नाना ने उनका नाम 'वृहस्पति' रख दिया था। गाँव में अशुद्ध उच्चारण के कारण वृहस्पति को 'बिहफँय' कहते हैं।) 'मुँह से पींपीं करता हार्न बजाता, दोनों हाथों को (स्टेयरिंग की तरह) घुमाता दिनभर आँगन में दौड़ता था।" मेरा मानना है बचपन में वाहन का एक अलग आकर्षण होता है। अधिकतर बच्चे मुँह से डिर्र-डिर्र, पीं.....पीं.....की ध्वनि निकालते हुए वाहन चलाने का अभिनय करते हैं। यह आकर्षण वक़्त के साथ ख़त्म हो जाता है। मामा का ख़त्म नहीं हुआ।



नाना-नानी की छह बेटियों के बाद मुँहमाँगी सातवीं सन्तान–वृहस्पति शुक्ल। मेरी माँ तीसरी सन्तान हैं। मामा मुझसे सात वर्ष बड़े थे। नानी ने माँ बनना बन्द नहीं किया था। उधर सबसे बड़ी मौसी ने माँ बनना आरम्भ कर दिया। मौसी की बड़ी बेटी मामा से एक साल बड़ी है। यह चारी का पहला मामला नहीं था। न ही जग-हँसाई जैसा था। चारी में चार-छह घर हैं जहाँ सास-बहू ने एक–साथ सिठौरा (गुड़, सोंठ, मेवा के लड्डू) खाया है। बहू ने अपनी सन्तति के साथ देवर को भी स्तनपान कराया है। मामा को आभास न रहा होगा वे शिशु बनकर नहीं मामा बनकर जन्मे हैं। उनकी बहनों के बच्चे मामा के भान्जे-भान्जी नहीं भाई-बहन जान पड़ते।

आम के मौसम में नानी सभी बेटियों को चारी बुलातीं। गर्मी की छुट्टियाँ रहतीं। अत: हम सभी दल-बल सहित चारी में एक माह पड़ाव डाले रहते। पता नहीं कब मामा मेरे क़रीबी बन गए। वे चारी में मुझे आप-बीती बताने के लिए तत्पर मिलते–

"छोटे, तुम्हारी नानी कहती हैं मैं जन्मजात मामा हूँ। नाना कहते हैं जन्मजात वकील हूँ। अभी साफ़ नहीं है मैं जन्मजात क्या हूँ?"

वे नाना को 'बाबू', नानी को 'अम्मा' कम ही कहते थे। नानी, नाना उम्र में उनसे इतने बड़े थे कि माता-पिता कम नानी-नाना अधिक लगते थे।

उनकी बात सुनकर मैं आकलन देता, "मामा तुम जन्मजात ड्राइवर हो। सरपट बैलगाड़ी दौड़ाते हो।"

मामा बैलगाड़ी में कभी अनाज ढोते, कभी आम, कभी भान्जे-भान्जियाँ।

"साइकिल भी फ़र्राटे से चलाता हूँ। इस बार तुम्हें साइकिल चलाना सिखाकर श्रीपुर (जनपद, जहाँ मैं रहता हूँ) भेजूँगा।"

हम दोनों बनियातरी वाले मैदान में आ जाते। मामा मुझे साइकिल की सीट पर आरूढ़ कर पीछे कैरियर पकड़ कर साइकिल का संतुलन बनाते-फिरते हुए दौड़ते। हर साल एक-न-एक भान्जा या भान्जी साइकिल चलाना सीख कर ही घर वापसी करता। साइकिल चलाना सीख कर साइकिल मेरे लिए आकर्षण का केन्द्र बन गई। मैं पढ़ाई छोड़कर अक्सर साइकिल चलाता। माँ, मामा को आरोपी बनातीं–

"वृहस्पति ने साइकिल सिखाकर तुम्हें निकम्मा बना दिया है। कुछ पढ़ो।"

"मामा कहते हैं साइकिल चलाने का अभ्यास नहीं करोगे तो भूल जाओगे।"

"उसे गुरु बना लो। उसने जिस तेज़ी से बैलगाड़ी और साइकिल चलाना सीखा है, पढ़ाई सीख ले तो तुम्हारे नाना के शीश को ठंडक मिले।"

नाना चारी में रसूख़ रखते थे। दो मामलों में उन्हें चारी का 'प्रथम पुरुष' कहा जा सकता है। वे चारी के पहले अधिवक्ता और पहले कार वाले बने। यह घर आज भी उकील (वकील) का घर कहलाता है। उन्हें वकील के काले कोट और लहरियादार (बैरिस्टर क्लाथ से बनी पतलून)

सम्पर्क : मो. 8269895950, ई-मेल : sushmamunindra@gmail.com

Ajkal_October_2022.indd 24 27-09-2022 13:58:18

पतलून से ख़ास लगाव था। पुराने बक्से में आज भी ये पोशाक बरामद हो जाएगी। फ़ोर्ड कार आज भी चैगान की शोभा बढ़ा रही है। वकालत का कहें तो नाना ने चारी से ग्यारह किलोमीटर दूर बैरहन (तहसील) की अदालत में रामसनेही अधिवक्ता की सुपुर्दगी में दीवानी का ऐसा सूत्रपात किया कि जीवन-पर्यन्त उनके जूनियर ही बने रहे। कार का कहें तो न जाने कैसे उन्होंने एक मुवक्किल से थर्डहैण्ड फ़ोर्ड दो हज़ार में कबाड़ ली। फ़ोर्ड के चारों टायर, सीट कवर, डोर लॉक आदि नष्टप्राय थे पर इंजन 'ओल्ड इज़ गोल्ड' की तरह उत्तम अवस्था में था। फ़ोर्ड के नष्टप्राय पार्टों की मरम्मत करा, खिड़कियों में मोटे सूती वस्त्र के केसरिया पर्दे लगवाकर नाना चारी के प्रथम कार वाले बने। असाधारण कार को सीखने का उन्होंने असाधारण प्रयास किया किन्तु सफल न हुए। वन्स इन अ मन्थ फ़ोर्ड से अदालत जाने की साध, साध ही रह गई बदस्तूर साइकिल से बैरहन आना-जाना करते रहे। चारी में एक मात्र प्राथमिक शाला थी। उन्होंने पाँचवीं उत्तीर्ण मामा को बैरहन के शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में भर्ती करा दिया। मामा को विद्यालय छोड़ते हुए कचहरी जाते। शाम को मामा को विद्यालय से लेते हुए चारी लौटते। मामा ने जब देखा नाना साइकिल चलाने में हाँफ जाते हैं, वे नाना को कैरियर में बैठाकर आना-जाना करने लगे। कभी उत्तीर्ण कभी पूरक, कभी अनुत्तीर्ण होते हुए मामा ने साढ़े उन्नीस वर्ष की अवस्था में द्वितीय श्रेणी हायर सेकेण्ड्री कर दिखाई। जिस वर्ष फ़ोर्ड ली गई, मामा अलग अंदाज़ में मिले–

"छोटे, तुम्हारे नाना को क्या कहूँ?"

"कह डालो।"

"कहते हैं वकालत करने से कार रखने की हैसियत अपने-आप बन जाती है। मोहल्ले में सन्देश जाता है चैगान में कार खड़ी है मतलब वकालत चल रही है।"

"नाना, फ़ोर्ड से कचहरी जाने लगे?"

"कार चलाना सीख ही नहीं पाए। कोशिश खूब किए। ड्राइविंग उन जैसे क्षुद्र प्राणी के लिए नहीं है।"

"तुमने सीखी?"

"चुटकियों में। नाना रात में जब ख़र्राटे भरते, मैं बनियातरी फ़ोर्ड से फ़र्राटे भरता था। नाना को मेरा गुण-धर्म मालूम हुआ तो धमकाने लगे, अठारह साल से पहले वाहन चलाना क़ानूनन अपराध है।"

"तुम अठारह पूरे कर चुके हो।"

"बीस का हो रहा हूँ। नाना, चार साल से सोलह का समझ रहे हैं।"

"नाना को अपनी सही उम्र बताई?"

"हाँ। धमकाने लगे, चारी में मेरा नाम है, यश है, धन है। तुम सब डुबो दो। मैंने कह दिया, मैं नहीं जानता नाम होना किसे कहते हैं। रामसनेही के घर पैदा होता तो जानता। नाना खेतों को यश, फ़सल को धन मानते हैं।"

"नाना क्या बोले?"

"वृहस्पति तुमने जिस जल्दबाज़ी में ड्राइविंग सीखी, उसी तरह वकील बन जाओ तो मैं तर जाऊँ पर तुम आत्मशासित जीव बनते जा रहे हो।"

"आत्मशासित जीव का अर्थ क्या होता है?"

"मैं अर्थ पूछ ही रहा था कि नानी बीच में कूद पड़ीं। मैं उनकी आँखों का तारा जो हूँ। तुम और नानी, दो ही हो जो मुझे समझते हो। नानी ने नाना को हुरपेट दिया। बिहफँय माट्टर (मास्टर) बनेगा। तुम्हारी उकालत में दम नहीं है। हमारे हाथ में कभी एक्कौ छदाम नहीं धरे। चार ठो गुंडे-बदमाश ज़रूर तुम्हें सलाम ठोंक देते होंगे।" नाना तड़क गए, "छदाम नहीं धरे हैं क्योंकि बैंक में धरते हैं।"

मामा की कायिक भाषा और लहजा ऐसा था कि साधारण बात में भी विनोद की प्राप्ति होती। मुझे उनका अंदाज़ अच्छा लगता जबकि घर के सदस्य कहते वे किसी लायक़ नहीं हैं। मैं सहमत नहीं होता था। मेरा मानना था मामा एक घेरे में डाल दिए गए हैं। नानी के रक्षात्मक रुख़ ने उन्हें ज़िद्दी बनाया। नाना की अपेक्षाओं ने स्वतन्त्र नहीं रहने दिया। गर्मी में उनकी बहनें चारी में बवाल किए रहतीं कि यह नानी-नाना को सताने के लिए जन्मा है। बवाल ने उन्हें मतलबी बना दिया। उनका जीवन निरर्थकता में बीतता रहा। यद्यपि चेहरा ऐसा बनाए रहते मानो बहुत व्यस्त रहते हैं।

मुझे दो बार मामा के साथ लम्बे समय तक रहने का अवसर मिला। पहला जब बैरहन के स्नातक कला महाविद्यालय से मामा तृतीय श्रेणी में बीए हुए। बैरहन में विधि महाविद्यालय नहीं था। नाना, मामा को लेकर श्रीपुर आए।

"सती (माँ का नाम) वृहस्पति को अपने पास रखकर लॉ करा दो। मुझे सहारा होगा।"

माँ की भंगिमा बिगड़ गई लेकिन दरियादिल पिताजी ने मामा का स्वागत किया। मामा ने विजेता की भाँति माँ को विलोका-

"सती (वे बहनों को दीदी न कह नाम से सम्बोधित करते थे) का मन नहीं है पर जीजाजी आप कह रहे हैं तो मैं यहाँ बस जाता हूँ।"

मामा यहाँ कम चारी में अधिक रहे। नानी उन्हें देखे बिना नहीं रह पाती थीं। वे फ़ोर्ड को देखे बिना नहीं रह पाते थे कि स्टार्ट न होगी तो बैठ जाएगी। जब यहाँ रहते पढ़ाई के समय कॉपी के पन्ने फाड़कर हवाई जहाज़, पाल वाली नाव, कैमरा, दवात आदि बनाते। इसी दौरान उनका विवाह हो गया कि वकील बनते रहेंगे, कुल वधू घर आ जाए। विवाह के दिन फ़ोर्ड को खूब चमकाय स्वयं चला कर मामा, मामी के गाँव केथ पहुँचे। मुझ सहित तमाम भान्जे फ़ोर्ड में बैठे। भान्जियों को नहीं ले जाया गया क्योंकि उन दिनों लड़कियाँ बारात में नहीं जाती थीं। यदि कोई चली गई, कहा जाता बारात में नचनिया आई है। बाराती बस में गए। केथ में बड़प्पन छा गया, दूल्हा निजी कार में आया है। सुरसरी (मामी) की क़िस्मत खुल गई। मामी के बग़ीचे में कटहल खूब लगी थी। पंगत में कटहल का प्रचुर प्रयोग हुआ। कटहल का अचार, कटहल की रसीली सब्ज़ी, कटहल की सूखी सब्ज़ी परोसी गई। पुलाव में भी कटहल की बोटियाँ बरामद हुईं। विदा के समय टोकरा भर कटहल बस में लदवा दिया गया कि अचार के काम आएगा।

मामा क़ानून का तीन-वर्षीय कोर्स चार वर्ष में पूरा कर जल्दी ही वकालत का लाइसेन्स झटक लाए।

"छोटे मैं तुम्हारे नाना से अग्रणी हो गया।"

"कैसे?"

"उनके पास एक मात्र वकालत का लाइसेन्स है। मेरे पास ड्राइविंग का भी है। दो लाइसेन्स वाला शुक्ल परिवार का पहला चिराग़।"

Ajkal_October_2022.indd 25 27-09-2022 13:58:18

"नाना खुश हैं?"

"मैंने उन्हें खुश कभी नहीं देखा। इतना ही बोले घर में एक और बैरिस्टर तैयार हो गया।"

"नाना के शागिर्द बन जाओ।"

"वे ही अब तक रामसनेही के शागिर्द बने हुए हैं। जैसे चारी में स्वतन्त्र वकालत करने का रिवाज नहीं है।"

"तुम करो।"

"मैं फ़ौजदारी में क़िस्मत आज़माऊँगा। फ़ौजदारी मेरे स्वभाव को सूट करेगी। हत्यारों को बरी कराओ। फ़ीस वसूलो। मैं तो कहता हूँ तुम भी लॉ कर बैरिस्टर बनो। हम दोनों पार्टनरशिप में वकालत करेंगे। मामा-भान्जे की जोड़ी श्रीपुर की अदालत में छा जाएगी।"

"तुम तो बैरहन में वकालत करते हो।"

"तुम वकील बन जाओ, मैं श्रीपुर पधार जाऊँगा।"

"मैं जज बनना चाहता हूँ।"

न्यायाधीश बनना मेरे नसीब में नहीं था।

लॉ करते हुए मेरे ज़ेहन में वकालत नहीं, न्यायाधीश की कुर्सी थी। प्रत्येक प्रयास में मेरा साक्षात्कार बहुत अच्छा रहा पर चयन नहीं हुआ। मेरा ध्यान अपने मातृकुल के व्यवसाय की जानिब गया। सुनकर माँ के निम्न रक्तचाप वाले रक्त में बुलबुले उठने लगे-

"नाटू (छोटा भाई) ने आई.आई.टी. निकाल लिया। छोटे तुम शुरू से वृहस्पति के चंगुल में रहे हो। जज न सही जज के नाज़र बन जाओ। वकालत से अच्छा रहेगा।"

पिताजी ने प्रकरण का निपटारा किया, "छोटे, वकालत करना बुरा नहीं है। तुम टैक्सेशन की वकालत करो। इसे 'शाही वकालत' कहते हैं।"

टैक्सेशन की वकालत करते हुए मैं असहज था। मामा नाख़ुश होंगे कि मैं उन्हें पार्टनर नहीं बनाना चाहता। इसलिए अलग क्षेत्र चुना पर उन्होंने घनिष्ठता बनाए रखी। चैम्बर में आए-

"छोटे, यह कौन-सी वकालत है? मैंने नाम तक नहीं सुना।"

"सेठ-साहूकारों, उद्योगपतियों की वकालत है।"

"बेकार वकालत है। न काला कोट पहनते हो न लहरियादार पतलून। यह पोशाक ही वकील को वकील बनाती है।"

"तभी चौबीसों घंटे पहने रहते हो।"

"काले कोट और कार के बिना वकालत का मतलब नहीं है। नाना नहीं रहे पर उनकी बात मुझे याद है– वकालत करने से कार रखने की हैसियत अपने-आप बन जाती है। मोहल्ले में सन्देश जाता है चैगान में कार खड़ी है मतलब वकालत चल रही है। एक कार ले डालो।"

"जब पैसा होगा लूँगा। फ़ोर्ड कैसी चल रही है?"

विंटेज कार रेस में भाग लेने वाले एक शौकीन की नज़र फ़ोर्ड पर पड़ गई अच्छी क़ीमत दे रहा था। मैंने नहीं बेची। कार चैगान की शोभा होती है। तुम्हारे लिए सेकेण्ड हैण्ड कार तलाश करूँ?"

"जब भी लूँगा, नई लूँगा।"

समय इतिहास के पन्नों में दर्ज होता रहा। पहले नाना फिर नानी इह लोक छोड़ गईं। मामा फिर वकालत में खलबलाए हुए थे। मैंने ज़रूर वकालत में इतनी सफलता पा ली थी कि बैंक लोन लेकर मारुति आठ सौ ख़रीद ली। यह दूसरी बार था जब मामा लम्बे समय तक मेरे साथ रहे। मारुति की ख़बर मिलते ही चले आए, "छोटे, थोड़ा घूमते हैं।"

"चलो मामा।"

मामा तन कर ड्राइविंग सीट पर आसीन हुए। मैं साथ वाली सीट में बैठा–

"छोटे, सोचता हूँ तुम्हें ड्राइविंग सिखा कर ही चारी वापस जाऊँ।"

"कितने दिन में सिखा दोगे?"

"मैं बिना सिखाए सीखा हूँ। ऐसी सिखा दूँगा कि तुम हिमालयन कार रैली में भाग लेने लायक बन जाओगे।"

"मेरा व्यवसाय कार रैली नहीं वकालत है।"

"छोटे नाम की तरह तुम्हारी बुद्धि भी छोटी है। रैली के प्रतिभागी बेरोज़गार नहीं होते। कुछ-न-कुछ व्यवसाय करते हैं।"

ड्राइविंग सीखने-सिखाने की योजना माँ को षड्यंत्रकारी लगी। मुझे एकांत में घसीट ले गईं-

"एक कंस मामा हुआ, दूसरा शकुनी, तीसरा यह वृहस्पति मामा। तुम्हें कार सिखाने नहीं तुम्हारी वकालत ठप्प करने आया है। रफ़ा-दफ़ा करो। ड्राइविंग सेन्टर में ड्राइविंग सीख लेना।"

मैंने मामा को रफ़ा-दफ़ा करने का कड़ा प्रयास किया-

"मामा, ड्राइविंग लाइसेन्स बनवा लूँ तब ड्राइविंग सीखूँ। तब तक तुम अपनी कचहरी सम्भालो।"

"आर.टी.ओ. दफ़्तर में कार चलाकर दिखाओगे तब लाइसेन्स बनेगा।"

"यह तो वही बात हुई। पहले वकालत जमाओ तब लाइसेन्स बनेगा।"

"तुम जैसे क़ानूनी कीड़े का व्यावहारिक ज्ञान ज़ीरो होता है। तमाम लोग बिना लाइसेन्स के वाहन चलाते हैं।"

"मैं नहीं चलाऊँगा। अपने मुवक्किल पर लगा टैक्स बचाने के लिए मैं कोई-न-कोई अधिनियम ढूँढ लेता हूँ। तुम भी ढूँढो।"

"लर्निंग लाइसेन्स बनवा लो।"

"वकालत में नहीं बनवाना पड़ता।"

"वकील की तुलना वाहन चालक से मत करो। ड्राइविंग सीखना वकालत सीखने से कठिन है।"

"मेरे लर्निंग लाइसेन्स के लिए आवेदन करते ही मामा ने हाड़ तोड़ मेहनत कर लर्निंग लाइसेन्स दिला दिया। लॉ करते हुए वे बार-बार चारी भागते थे। अब विकट कार प्रेम के कारण मेरे घर में ऐसे जम गए जैसे यहीं जन्मे हैं। छाती में दमभर कर बोले-

"छोटे, प्रत्येक काम के नियम होते हैं। वकालत सीखने के लिए तुम दो साल तक गुरुजी (नीरज एडवोकेट) के जूनियर रहे। ड्राइविंग सीखने के लिए मेरे जूनियर बनो। मुझे कार चलाते हुए ध्यान से देखो। गियर, क्लच, एक्सीलरेटर, ब्रेक, हॉर्न का प्रयोग अपने-आप सीख जाओगे।"

"कार चलाते हुए प्रयोग के स्तर पर सीखूँ तो जल्दी सीख जाऊँगा।"

"वकालत गुरुजी की कुर्सी पर बैठ कर सीखी है? ड्राइविंग के लिए पहले दूर दृष्टि, पक्का इरादा, दृढ़ विश्वास जागृत करो।"

मामा दोनों वक़्त डट कर चाय, नाश्ता, भोजन ग्रहण करते। चार-

Ajkal_October_2022.indd 26 27-09-2022 13:58:19

छह लीटर पेट्रोल फूँकते। कार को पोछते-चमकाते। एक माह धीरज धर माँ आख़िर बोलीं-

"छोटे, तुमने ड्राइविंग खूब सीखी अब वृहस्पति को चारी की सुध लेने दो। सुरसरी अकेले जान पेरती है।"

"माँ, अभी तो मामा मुझे मौखिक प्रशिक्षण दे रहे हैं। मैंने स्टेयरिंग को छुआ ही नहीं है।"

"तुम जानो, मामा जानें। मैं कुछ दिन के लिए नाटू के पास विशाखापट्टनम जा रही हूँ।"

माँ सचमुच सेवानिवृत्त पिताजी को लेकर चली गईं। मुझे लगा माँ के गमन से मामा उच्चाटन महसूस कर चारी लौट जाएँगे पर वे प्रफुल्लित हो गए–

"सती बड़ा सवाल-जवाब करती थी। अब मैं तुम्हें निर्बाध ड्राइविंग सिखाऊँगा। चलो ड्राइविंग सीट पर बैठो।"

ड्राइविंग सीट पर बैठते हुए मेरी कनपटी से उसी तरह स्वेद बहा जैसे पृथक वकालत जमाते हुए पहले दिन अपनी कुर्सी पर बैठने में बहा था। मामा ने मेरे स्वेद पर वेधक नज़र डाली-

"स्टार्ट करो। ऐसे सिकुड़कर बैठे हो जैसे चोरी की कार है।"

"पसरकर बैठ जाऊँ पर तुम मुझसे इतना सटकर बैठे हो कि हिल नहीं पा रहा हूँ।"

"स्टेयरिंग पकड़ो।"

मेरे स्टेयरिंग पकड़ते ही मामा ने फुर्ती से शेष क्रिया-कलाप सम्पन्न कर कार स्टार्ट कर दी। चल पड़ी कार को देखकर वही रोमांच मिला जो पहली बार छोटा-सा केस जीतने पर मिला था।

मैं मन लगाकर स्टेयरिंग घुमा रहा था लेकिन उधड़ गई सड़क के गड्ढों से कार को मामा की भाँति दक्षता से नहीं बचा पा रहा था। कार को हिंडोले की तरह हिचकोले खाते देख मामा बोले–

"छोटे, गड्ढे देख रहे हो? तुम्हारे मुजरिम टैक्स की चोरी न करें तो सरकार राजस्व धन से सड़क को चिकना करा दे।"

फ़ौजदारी की वकालत करते हुए मामा की मुजरिमों से इतनी समीपता रही है कि मुवक्किल को मुजरिम कह देते थे।

"मामा, तुम्हारे मुवक्किल मुजरिम हैं, मेरे सम्मानित जन हैं।"

"तुम्हारे मुवक्किल बर्छी-कटार नहीं चलाते, टैक्स चुराकर सीधे सरकार को हलाल करते हैं। ये ज़िला स्तर के नहीं राष्ट्र स्तर के मुजरिम हैं।.... वह माइलस्टोन देख रहे हो? वहाँ से वापसी कर लो। सीखने के लिए दस किलोमीटर बहुत है।"

माइलस्टोन तक जाने और लौटने अर्थात् 20 किलोमीटर के नित्य अभ्यास से मुझमें थोड़ी-बहुत दूर-दृष्टि, पक्का इरादा, दृढ़ विश्वास पाया जाने लगा फिर भी आकस्मिक स्थिति में घबरा जाता। सुबह सड़क में लोगों का आना-जाना कम रहता पर पता नहीं कैसे सड़क पार करता हुआ एक बूढ़ा कार के सामने आ गया। मामा ने स्टेयरिंग झटके से न मोड़ी होती तो धरती से एक मानव कम हो जाता। मामा स्टेयरिंग को झटका देते हुए कार को सड़क के किनारे ले आए। घबराहट में मुझे ख़याल न था कार स्वत: बन्द हुई या मामा ने बन्द की।

"मामा आज मुझ पर धारा 304(ए) लग जाती।"

"धाराएँ मुखाग्र रखोगे तो ड्राइविंग नहीं सीख सकोगे। आज मैंने तुम्हें कारावास जाने से बचा लिया।"

"ग़लती बूढ़े की थी।"

"अब तक तुम ड्राइवरों को लापरवाह कहते थे। अब पैदल चलने वाले ग़लत हो गए?"

"जब तक मैंने स्टेयरिंग नहीं पकड़ी थी, वाहन चालक दोषी लगते थे। आज पता चला पैदल चलने वाले ऐसे असामाजिक तत्त्व हैं जो दुर्घटना करने के लिए सड़क पर बगरे रहते हैं। ये न हों तो हमारे देश में सड़क दुर्घटनाएँ चेचक की तरह ख़त्म हो जाएँ। अब मुझसे न होगा। तुम चलाओ।"

मामा कार चलाने लगे।

मुझे सहसा लाइसेन्स का ख़याल आ गया।

"मामा ड्राइविंग लाइसेन्स साथ में रखते हो न?"

"हाँ।"

"नवीनीकरण कराते हो?"

"नहीं।"

"कभी एक्सीडेन्ट करोगे तो क़त्ल के केस में फँस जाओगे। वकालत का लाइसेन्स रद्द हो जाएगा।"

"छोटे, तुम्हारे पाँच सेर के कपाल में वकालत की जड़ें गहरे तक जमीं हैं। क़ानून और यातायात के नियमों को याद रखोगे तो ड्राइविंग नहीं सीख सकोगे। अँगूठा छाप लोग अच्छे ड्राइवर क्यों होते हैं?"

"क्यों?"

"क्योंकि धाराओं से नहीं गति से मतलब रखते हैं। ओवरटेक करने का उन्हें शौक होता है। गंतव्य पर समय से पहले पहुँचने का लक्ष्य रखते हैं।"

धीरे-धीरे मैं स्टेयरिंग के साथ क्लच, गियर, ब्रेक, एक्सीलरेटर आदि का समायोजन सम्भालने लगा पर गति बढ़ाने का हौसला न होता। गति से ख़ास लगाव रखने वाले मामा भर्त्सना करते, "छोटे, कार को बैलगाड़ी की तरह हाँक रहे हो। कितने वाहन हमसे आगे निकल गए।"

"कोई बात नहीं। मैंने कितनों को वकालत में पीछे छोड़ा है।" "छोटे, मैं टैक्स की वकालत को वकालत नहीं मानता। अधिकारियों को रिश्वत देकर मुवक्किल पर लगा टैक्स बचाने को वकालत नहीं कहते। मैं जज के सामने रिश्वत का लिफ़ाफ़ा नहीं बुद्धि की थैली खोलता हूँ।"

"विरुदावली जानता हूँ।"

"मैंने वकालत को कमाई का ज़रिया कभी नहीं बनाया। तुमने अपने मुवक्किलों की तिजोरी चूस कर धन संग्रह कर लिया है, ब्रैण्ड न्यू कार ख़रीद ली है। इससे तुम वकील मौर्य नहीं बन गए हो। मेरी तरह वकील ही हो। मुझे वकालत के साथ कार के दाँव-पेंच की भी जानकारी है। तुम्हें सिर्फ़ वकालत की।"

"जानकारी के कारण जज को फ़ोर्ड, फ़ोर्ड को मी लॉर्ड तो नहीं कह देते?"

"जज को नहीं, एक-दो बार तुम्हारी मामी को फ़ोर्ड, फ़ोर्ड को अजी ज़रूर कह गया।"

"ग़ज़ब का घालमेल करते हो।"

"तुमसे कम करता हूँ। सेकेण्ड गियर कहता हूँ, फ़ोर्थ लगाते हो।"

"सेकेण्ड लगाता हूँ, फ़ोर्थ लग जाता है। जैसे इन्कम टैक्स के प्रकरण में सेल्स टैक्स लग जाए।"

"अच्छा चलो, गति बढ़ाओ। उस ट्रक से साइड माँगो।"

Ajkal_October_2022.indd 27 27-09-2022 13:58:19

साइड माँगने के लिए मैं हॉर्न बजाने लगा। मामा ने व्यवधान दिया–

"छोटे, तुम्हें ओवरटेक करने की तमीज़ नहीं है। गति बढ़ाकर ट्रक के पास पहुँचो। तब तक हॉर्न दो जब तक ट्रक से आगे न निकल जाओ। एक कोस दूर से हॉर्न दे रहे हो। ट्रक वाले के कान विलक्षण नहीं हैं जो इतनी दूर से सुनेगा।"

"बजा रहा हूँ कि पहले से नोटिस देना चाहिए। मेरे मुवक्किल को विभाग की ओर से माह, दो माह पहले नोटिस मिल जाता है।"

"तुम्हें वकालत के दौरे पड़ते हैं। स्पीड बढ़ाओ।"

मैंने गति बढ़ाकर ओवरटेक सम्पन्न किया। माइलस्टोन से वापसी की। देखता हूँ तेज़ गति, तेज़ हॉर्न वाली जीप पीछे लगी है। मामा बोले-

"जीप वाला साइड माँग रहा है।"

मैंने खिड़की से हाथ लहराकर साइड देने का संकेत किया। उसने ग्रहण नहीं किया।

"छोटे, जीप वाला तुम्हारी तरह नौसिखिया जान पड़ता है।"

वह नौसिखिया नहीं मेरा मुवक्किल था। बग़ल में जीप लाकर चिल्लाया, "आजकल आप चैम्बर में नहीं मिलते हैं। ज़रूरी काम है।"

मैंने सड़क के किनारे कार रोक दी। जीप को किनारे लगाकर वह मेरे पास आया–

"सरकारी नोटिस मिला है। यह देखिए।"

उसने खीसे से काग़ज़ निकाला। मुझे ग्लानि हुई कार के फेर में दस के स्थान पर बारह बजे अपने चैम्बर पहुँचता हूँ या कि चैम्बर न जाकर सीधे सरकारी दफ़्तर चला जाता हूँ। मुवक्किल उपेक्षित होते हैं। ग्लानि के कारण मैं सरेराह मुवक्किल को प्रक्रिया समझाने लगा। मामा ने तौहीन कर दी–

"वकालत के इतने बुरे दिन नहीं आए हैं। सड़क पर क़ानून खोल कर न बैठो।"

मैंने मुवक्किल से शाम पाँच बजे चैम्बर में मिलने को कह अपनी राह पकड़ी।

मुवक्किल ने जैसे मेरी आँखें खोल दी। लगा मामा मुझे कार के इन्द्रजाल में उलझाते जा रहे हैं। मेरी वकालत उपेक्षित हो रही है। मामा चारी नहीं जा रहे हैं। ज़रूरी सन्देश पर जाते हैं तो दो-चार दिन में लौट आते हैं। माँ विशाखापट्टनम से लौट नहीं रही हैं। गर्मी की छुट्टियाँ हैं लेकिन मेरी पत्नी नवेली दोनों बच्चों को लेकर मायके नहीं जा पा रही है। अंतत: लैण्डलाइन टेलीफ़ोन पर माँ ने मुझसे स्पष्ट कहा, "मामा को रुख़्सत करो।" मुझे समझाकर माँ ने मामा से सीधे बात की, "चारी में सुरसरी अकेले जान पेरती है। तुम अपनी ज़िम्मेदारी देखो। तुम्हारे तीन ठो लड़के हैं। उन्हें मनई बनाओ। खेत-खलिहान देखो। सुरसरी सीधी है और कोई होती तो कान उमेठ कर तुम्हें ले जाती। छोटे ड्राइवर रख लेगा। नाटू ने श्रीपुर के अपने एक दोस्त से बात की है। उसने ड्राइवर भेजने को कहा है।"

ड्राइवर प्रसंग मामा को उच्चाटन की तरह लगा।

मैंने आग्रह किया पर वे नहीं रुके।

चारी से जब भी श्रीपुर आते मेरे चैम्बर ज़रूर आते। कार की चर्चा करते। इस बीच मोबाइल ने गाँव-गाँव पैठ बना ली। मामा मोबाइल पर बात करते.....छोटे, अब फ़ोर्ड के पार्ट्स बाज़ार में नहीं मिलते। मिले भी तो मेरे पास ख़रीदने के लिए पैसा नहीं है ---- स्टेयरिंग न घुमाऊँ तो मुझे अपने हाथ, हाथ नहीं लगते हैं ---- पता नहीं कौन दो टायर निकाल ले गया ---- फ़ोर्ड ईंटों पर खड़ी है।---- तुम्हारी मामी की बेवकूफ़ी--फ़ोर्ड में लौकी, कुम्हड़े, तेतुआ, सेम की बेलें चढ़ा देती है। फ़ोर्ड झाला (बेल चढ़ाने के लिए बाँस, खप्पचियों से बनाया जाता है) बनी हुई चैगान में खड़ी है।"

निरर्थकता में जी रहे मामा।

निरर्थकता में व्यस्त रहने वाले मामा।

जिनके अंदाज़ में विनोद था।

जिनके अंतिम दो बरस गम्भीर बीमारी में बीते। वे श्रीपुर के नर्सिंग होम में भर्ती थे। माँ के साथ उन्हें देखने गया। पिताजी अब नहीं रहे। नानी ने शुद्ध दूध, घी, दही से मामा की जो काठी बनाई थी वह आधी हो गई थी। उन्हें देखकर माँ रोने लगीं। मैंने माना वे अपनी हरकतों से सबको ख़फ़ा किए रहते थे फिर भी माँ और मौसियाँ उनपर ममता रखती थीं। मुझे देखकर आत्मीयता से हँसे-

"खूब नाम कमा रहे हो। सुनता हूँ तो अच्छा लगता है। अच्छी बड़ी कार ख़रीदो।"

"दो साल पहले इनोवा ली है।"

"बताया नहीं।"

कह न सका कि माँ ने मना किया था कि सुनकर तुम फिर सालभर के लिए बसने आ जाओगे।

"ध्यान नहीं रहा। पहली कार की जो खुशी थी वह इनोवा के लिए नहीं हुई।"

"मारुति मुझे दे दो। फ़सल बेचकर धीरे-धीरे क़ीमत चुका दूँगा।" "अब स्कूटर से नहीं मारुति से दफ़्तर जाता हूँ। इनोवा शहर से बाहर जाने के लिए है।"

"टी.बी. का इलाज चल रहा है वरना इनोवा चलाने का मज़ा लेता।"

थोड़ा स्वस्थ होने पर नर्सिंग होम से मामा को छुट्टी मिल गई। माँ ने कुछ दिन अपने साथ रहने का आग्रह किया कि स्वस्थ होकर चारी जाएँ पर मामा नहीं माने। नर्सिंग होम का बिल माँ ने भरा।

मैंने उन्हें इनोवा से चारी भेजा। चारी में उनका स्वास्थ बिगड़ गया। उनके बेटे उन्हें लेकर सेकेण्ड ओपीनियन के लिए नागपुर गए।

नागपुर के चिकित्सकों ने कहा- टी.बी. नहीं है- ग़लत दवाइयाँ दी जा रही हैं जो प्रतिरोधात्मक क्षमता को ख़त्म कर रही हैं। आँत में कैन्सर है जो फैलता जा रहा है। मुम्बई के कैन्सर सेन्टर में दिखाएँ। मामा ट्रेन से मुम्बई गए। मैंने इलाज के लिए उन्हें एक लाख रुपये दिए। मुम्बई में एक सप्ताह तक चली गहन जाँच से ज्ञात हुआ कैन्सर नहीं है। पैनक्रियाज़ में सड़न है। सर्जरी होगी। सर्जरी कराकर चारी लौटे मामा बिस्तर से नहीं उठे। मैं माँ के साथ चारी गया। वे कमज़ोर और असहाय लग रहे थे–

"अच्छा हुआ छोटे तुमने मुझे मारुति नहीं बेची। क़ीमत न चुका पाता। दो-तीन साल से फ़सल ठीक से नहीं हुई कभी सूखे से चौपट हुई, कभी पाला मार गया। इस बार ओले से पूरी धान सिर गई। तुम जानते हो वकालत को न मैंने कमाई का ज़रिया समझा न नाना ने। जो थोड़ा-बहुत

पृष्ठ 47 पर जारी...

Ajkal_October_2022.indd 28 27-09-2022 13:58:19

● दो कविताएँ : **रोहिणी अग्रवाल**



शिलालेख है माँ

माँ मेरी ज़िन्दगी का आमफ़हम पन्ना नहीं
सदियों की यात्रा का
शिलालेख है
खुदी हैं जिस पर आचार-संहिताएँ
वर्जनाओं और क्रूरताओं की
शास्त्र हैं अनेक, निबद्ध हैं जिनमें
स्तुतियाँ, ख़ुशामदें और दमन की मनोहारी
लीपापोतियाँ

मीलों वीरान रास्ते पर
मौसम की मार झेल कर खड़ा है वह
शिलालेख आँधियों का डटकर मुक़ाबला
किया है उसने पाताल तक
धँसा कर जड़ें जिजीविषा की
क़हर बरसाती बारिशों को बाँध लिया है
आँचल में
जहाँ ढेरों ढेर जंगल समाए हैं
अपनी तमाम बनैली हरियाली के साथ

माँ की कातरताओं ने
पोंछ डाली है शिलालेख की दमकती इबारत
वहाँ कहीं खिंच गई हैं कुछ लकीरें कुछ बिंदु
आयतें और त्रिभुज
वृत्त को काटती कुछ हठीली रेखाएँ
माँ के अनुभव का इतिहास हैं ये
जल है जिसमें खारा और जल को
अग्नि-प्रलय बना लेने का जज़्बा भी

सृष्टि टिकी है अभी अपनी धुरी पर
मानकर अनुदेश गुरुत्वाकर्षण के
चलती है सिधाई चाल पर
अग्नि-प्रलय को छुपाकर रखती है
पत्तों के दोने में
कि छिटक गई एक भी चिन्गारी बाहर
धू-धू जल जाएँगी तमाम ख़ुराफ़ातें
साम्राज्यवादियों के दंभ
इतिहास की दमकती शृंखलाएँ
रह जाएगा केवल वह धूसर शिलालेख
पाताल से आसमान तक
अपनी अकिंचनता में
दृढ़ता का कलरव बुनता

माँ की चित्रलिपि को नहीं पढ़ पाते बेटे
वह बेटियों की हूक में
अपने को अक्षर-अक्षर पढ़ते
सुलगती रहती है सदी से सदी तक।

स्मृतियाँ साझे पल की

उनका जाना
जुदाई का पड़ाव नहीं
विदाई का फ़ैसला था

क़ायदे से
बुक्का फाड़ कर रो पड़ना चाहिए था मुझे
या लिपट कर पैरों में
न जाने की गुहार लगाना था
पर मैं देखती रही
जुदाई और विदाई के बीच उनकी क़दमताल

चाहती भी तो क्या रोक पाती ?
रोकने से नहीं लौटती लहर
लौटते हैं अनिश्चय
नहीं लौटता स्पंदन
लौटते हैं भ्रम
शंका की भित्ति पर दुमंज़िले महल बनाकर

नहीं रोकती उन्हें
जानती हूँ
जाने में विलगने का भाव है



बढ़ती दूरियों और फ़ासलों पर लगी
पक्की मुहर
रोकने की तरह कठिन है
छीन लेना साझे पल
एक-दूसरे में गुत्थम-गुत्था रहते हैं
जो इस तरह
कि अलग-अलग अपना हिस्सा बटोरने का
जोड़-सूराख़ तक नहीं छोड़ते

साझे पलों में बसती है सुवास
तरन्नुम में झूलती आस की कपास
साझे पलों में रहती हैं विहँसती स्मृतियाँ
स्मृतियों में समय अशेष
समय में प्रिय
स्पंदित और अनुरक्त !

प्रिय के चले जाने की हूक की तरह
सत्य है प्रिय का होना साझे पल में
मैं प्रिय की अनुपस्थिति में
प्रिय के संग रहती हूँ
देखती हूँ गाढ़ा होते प्यार को।

निरन्तर चल रही हूँ प्रिय के संग
चलना क्रिया है
और मेरा फ़ैसला भी। ❑

सम्पर्क : *मो. 9416053847, ई-मेल : rohini1959@gmail.com*

Ajkal_October_2022.indd 29 27-09-2022 13:58:19

● चार कविताएँ : **अनिल प्रभा कुमार**



रोबोट

एक मतवाली भीड़ है
उसके हाथों में झंडे हैं
जलती हुई मशालें हैं
उनके कंधों से सिर ग़ायब हैं
वह एक आवाज़ से बोलते हैं
केवल एक ही तरह का आदेश
समझते हैं
एक ही दिशा में
बढ़ते हुए
एक ही दृश्य देखते हैं
इस भीड़ के अलावा
वह सबको काट देते हैं
वह देखने में मनुष्य
लगते हैं
उनका सीना क़ब्रिस्तान है
मरी हुई संवेदनाओं का
वह बस एक भीड़ है
जो उन्माद के डीज़ल से
आगे बढ़ रही है
और बढ़ती ही जा रही है।

कायर

जब चारों तरफ़
आग लगी है
मैं शान्त चुप बैठी हूँ
बस टुकुर-टुकुर देखती हूँ
लावा दिल में उतरता है
विस्फोट नहीं करता
जम जाता है



हिलने की कोशिश में
पाँव वहीं गिर जाते हैं
लड़खड़ाकर
आवाज़
गले में ही घुट जाती है
घों-घों करती
चीख़ों की चाबुकें
सीधी चेतना पर पड़ती हैं
नीली धारियाँ
काग़ज़ पर उभरती हैं
मैं शिथिल हो चुकी हूँ
तटस्थता का मुखौटा लगाए
भीतर छिपा मेरा चेहरा
अपना नाम पूछता है
निर्विकार, तटस्थ
या कायर?

शायद

वह रोता है
सूनी आँखों से
लिखता है
काँपती उँगलियों से
छटपटाता है मूक
ज़मीन पर लोटता
हाथों-पाँवों से
खुरचता है मिट्टी
कहीं, कोई तो लकीर खिंचे
बरसे पानी
संवेदना उग आए
शायद।

कतरे हुए पंख

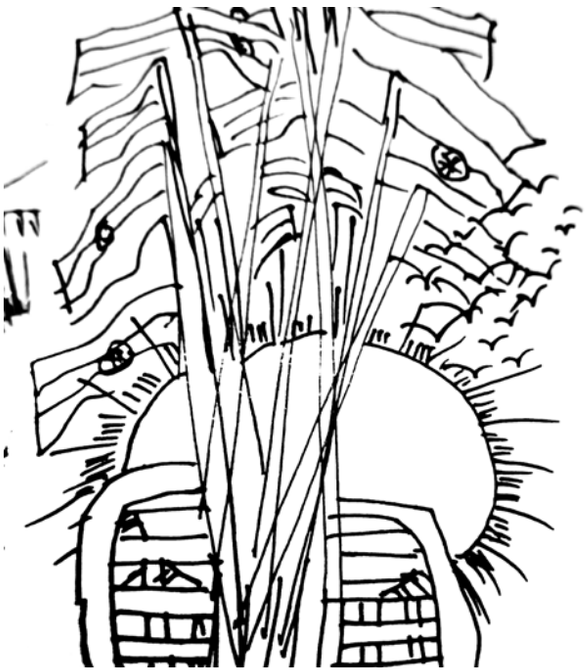
कब से कतरे जा रहे हैं
मेरे पंख
पीढ़ी-दर-पीढ़ी
हर देश में
हर काल में
हर धर्म में
हर समाज में
उन्हीं के द्वारा
जो जन्मते हैं मुझसे
मेरी ही आग से तपकर
एक दिन खड़े हो जाते हैं
मेरे ही सामने
तेज़ धारदार हथियार लिए
उनके क़ानून
उन्हीं का न्याय
उन्हीं की सज़ा
काट दिए जाते हैं मेरे पंख
हर बार
हर बार
मैं सिल लेती हूँ
अपने घायल पंख
और फिर-फिर
तैयार हो जाती हूँ
एक नई उड़ान के लिए
सूरज को भरना है
मुझे अपनी बाँहों में। ❑

सम्पर्क : मो. 9739783719, ई-मेल : aksk414@hotmail.com

Ajkal_October_2022.indd 30 27-09-2022 13:58:20

● चार कविताएँ : **पंकज चौधरी**





मुक्ति

अकेला हो जाने का भय
जब गहराने लगा
तभी उसे याद आया
सूर्य के अकेले जलने का
चन्द्रमा के अकेले चलने का

अकेले ही इस दुनिया में आने का
अकेले ही इस दुनिया से जाने का।

सांत्वना

कितनी राहत मिलती है
कितना सुकून पहुँचता है
चिन्ता कितनी कम हो जाती है
आत्मा का बोझ कितना हल्का होता है
आँसू कैसे छलक पड़ते हैं
जब किसी नाउम्मीद हो चुके आदमी से
कोई यह कहता है,
घबराओ नहीं
तुम्हारा हो जाएगा

भले ही वह झूठ क्यों नहीं बोल रहा हो !

हिम्मत

सलाम करो
उस इंसान को
जो हज़ारों मुक़दमे हारने के बावजूद
अगला मुक़दमा लड़ने जा रहा है
कहता है
जब तक जीतूँगा नहीं
हार नहीं मानूँगा।

सादिओ* माने

तुम एक ऐसे फलदार वृक्ष हुए
जिसने अपने फलों को
उनको खिलाने का काम किया
जिन्हें फल नहीं
पत्ते खाने को मिले

तुम एक ऐसे गुलशन हुए
जिसने अपने फूलों पर
देवताओं का नहीं
अपना नहीं
माली-मालन का अधिकार जमाया

तुम एक ऐसी लबालब नदी हुए
जिसने अपने पानी पर
उनका अधिकार किया
जिनकी ओस चाटे प्यास बुझती रही
तुम एक ऐसे हरे-भरे खेत हुए
जिसने अपनी फ़सलों को
उनके घर पहुँचाया
जिनसे अन्नपूर्णा का बैर कराया गया

तुम सेनेगल की धरती की वह चमक हो
जिसकी आभा
पूरे ब्रह्मांड में फैल गई है

सादिओ माने,
तुम इस विशाल पृथ्वी पर वह शोभायमान
मुकुट हो
जिसको पहनने की पात्रता मनुष्य
जाति में कहाँ ! ❑

*(सेनेगल के सादिओ माने फुटबॉल के विश्व प्रसिद्ध खिलाड़ी। उनकी कमाई अरबों में मानी जाती है लेकिन अपना काम एक टूटे फ़ोन से चलाते हैं। अपनी कमाई का बहुलांश अपने देश की ग़रीब और शिक्षा से वंचित जनता की ज़रूरतों को पूरा करने में ख़र्च कर डालते हैं। अपने देश में कई स्कूल खुलवाए हैं उन्होंने। वे कहते हैं कि ग़रीबी उन्होंने देखी है, इसीलिए दिखावा और चमक-दमक उन्हें पसंद नहीं।)

सम्पर्क : *मो. 9910744984, ई-मेल : pkjchaudhary@gmail.com*

Ajkal_October_2022.indd 31 27-09-2022 13:58:20

● दो कविताएँ : **चन्द्र**



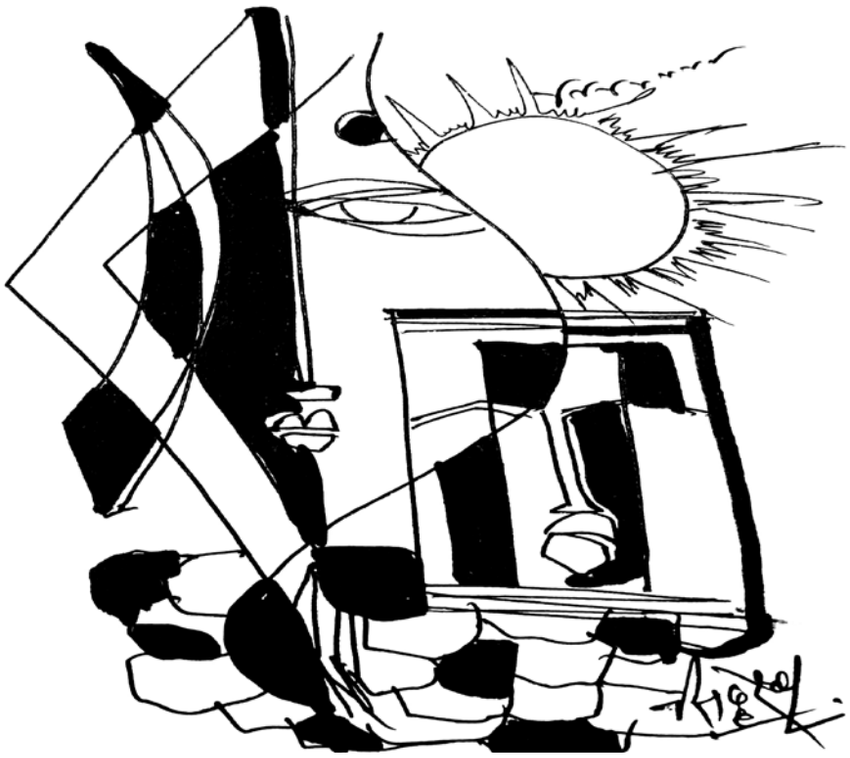
बैगन की आत्मकथा

भाई तुम्हारी खुरपी कहाँ है

उसने कहा-वहाँ रसोई घर के मिट्टी लगी
बेदी पर !

भाई उसे उठा लाओ यहाँ
मैं रेल की पटरी जैसी निहाई के पास बैठा
हुआ हूँ
जहाँ हथौड़ी भी है
और तेज़ धार करने वाली रेती भी

भाई, आओ ज़रा इस पत्थर पर भी पजा लें
अपनी-अपनी खुरपियों को
तब चलें
आषाढ़ की धूप में और
किसान के रूप में और चिड़ियों के चुप में
तब चलें
पसीने से बातें करने
तब चलें
पीठ
भिगोने
जब गर्मी से शरीर की पूरी शक्ति झर
जाएगी
बैगन के पत्तों से आत्मा जब खजुआएगी
नाक से छींक आएगी
तकलीफ़ भी बढ़ेगी
बेचैनी बढ़ेगी और वही एक-दो
रुपया किलो की क़ीमत रहेगी बैगन की,
तो आसा न रहेगी आँखों में
फिर भी भाड़ा लगाकर ऑटो में ले जाऊँगा



उसी लंका बाज़ार
और बाज़ार में 10 बस्ता बैगन फेंककर
तमाशा देखूँगा मैं
जन-गण का
फिर भी
मेहनत होगी
मेहनत की लगन होगी
बैगन के पत्तों पर
कीटनाशक दवाइयों का छिड़काव किया जाता
रहेगा
फिर भी
फिर भी बैगन के चोखे का स्वाद लेते रहेंगे
कीड़े, कीड़े, ढेर सारे कीड़े।

कुदाली से ढेला फोड़ने का गीत

जब हम कुदाली से ढेला फोड़ते हैं
रुख़ मिट्टी का
मोड़ते हैं

जब हम कुदाली से ढेला फोड़ते हैं
मामूली किसान जैसे आदमी की
देह चटक जाती है
कमर लचक जाती है
जैसे
छाती की बाती पर
चोट मारता है कोई
दनाक से !

कुदाली से ढेला फोड़ते हुए हम
कुदाली को
इस तरह छोड़ नहीं सकते
घाव लग सकता है गम्भीर
अपने ही देह पर
सनाक से !

उधर नदी है
जंगल हैं
बाँसझाड़ियाँ हैं
और बहुत सारे पंछी भी
वहाँ आवाज़ें
बार-बार जाती हैं
यहाँ से फूट-फूट कर
ढेलों के रोने की। ❑

सम्पर्क : मो. 9365909065, ई-मेल : chandramohan909065@gmail.com

Ajkal_October_2022.indd 32 27-09-2022 13:58:20

● कविता : **अर्चना लार्क**



तथागत ! यहाँ सब मंगल है

तथागत ! माया ने जीवन घेर लिया है
युद्ध, घृणा, आरोप बढ़ता जा रहा
रंग सिर्फ़ लाल दिख रहा है
हम जीवित नहीं, अधमरे हैं
और वे मर चुके हैं जिनका जीवन नारे से अधिक निश्चित न हो सका

हम शाश्वत हैं, मंत्रों का अध्ययन जारी है तथागत !
चरित्र, मर्यादा, शुचिता पाठ्यक्रम में है
गुरुकुल खुल चुका है

जीवन जीते एकाएक अपनी कला की याद
आ गई है हमें तथागत !
हमने मसख़री को अपना लिया है

नित प्राचीन शब्द नवीनता पर है
हम खाप पंचायत-सा जीवन लिए,
दरिंदों को शह देते
बात भी दुनिया बदलने की कर रहे हैं
हम ग़ुलाम नहीं आज़ाद हैं न, तथागत !

सूतक का ग्रहण लग चुका है धरती पर
लाश पर पाँव रखता सपूत जागरण पर है
नींद कम, चाय ज़्यादा चर्चा-ए-ख़ास है
माँ का घाव नासूर बन गया है
हमने अपनी माँ को ख़रीद लिया है
हम धनवान हो गए हैं तथागत !



कितने सम्वेदनशील थे उस काल में,
कितने मनुष्य-विरोधी
ये बताने की बात कहाँ बचती है तथागत !

जीभ पर उफनते जानवर
दिमाग़ की मछलियों को खा जाते हैं
आँखें सूख जाती हैं
जीवन के बचाव में
समुद्र का नमक कम पड़ गया है
सच तो ये है कि
हमारे नाव की पतवार खो गई है तथागत !

हमारा रुदन हमारी पहचान बनती जा रही है
क्रूरता, ब्रह्मांड को चीर रही है
लेकिन वर्चस्व हमारा क़ायम हो चुका है तथागत !

तथागत ! तुम किस शान्ति की बात करते हो ?
हमने बन्दूक़ की नोक पर महल खड़ा कर लिया है

बचे रिश्ते को पंक्तियों में समेट,
ठेल दिया है विमर्श को

तथागत ! हम खुश हैं
तुम किस दु:ख की बात करते हो ?

यहाँ अपने पक्ष की होड़ में हरेक
चेहरा बजबजा रहा है
प्रेम सधा हुआ फ़ॉर्मूला बन चुका है
जो हर पारी में खेला जाता है
तथागत ! तुम किस प्रेम की बात करते हो ?

हमने अपने अपने ईश्वर को
सम्भालना सीख लिया है
और मनुष्य जीवन ख़तरे में पड़ गया है
यहाँ सब कुशल है तथागत !

तुम किस धरती पर, कैसे जीव की
बात करते हो ?
किस सुख के बाद दु:ख आता है
अंतत: किस दु:ख का निवारण होता है तथागत ?

तथागत !
यहाँ पौरुष है
लज्जा है, शुभम है
हँसी है, ठहाका है
सब मंगल है
पर बाघ को हँसता देख, हर जीव सहम क्यों जाता है तथागत ?

आख़िर तुम किस मंगल की बात करते हो तथागत ?

अँधेरा घिर चुका है
चकवे का विलाप बढ़ता ही जा रहा है,
क्रौंच का भी वध हो गया है,
मेरा कोई नहीं बचा है
तुम तो आओगे न, तथागत !
बोलो तथागत ! ❑

***सम्पर्क** : मो. 9811837135, ई-मेल : larkarchana1@gmail.com*

Ajkal_October_2022.indd 33 27-09-2022 13:58:21

● पाँच ग़ज़लें : **भावना**



(एक)

आसमाँ के वक्ष पर अक्स अपना धर गया
वो हमारा चाँद था झील में उतर गया

धीरे-धीरे ही सही ज़ख़्म था वो भर गया
इस तरह ऐ ज़िन्दगी! यह भी दिन गुज़र गया

जिस्म से वो रूह तक गन्ध ऐसी भर गया
हम खड़े हैं सोचते, कौन था किधर गया

दिख रहा था कुछ नहीं जिस तरफ़ नज़र गई
इस तरह की धुन्ध थी, रास्ता ठहर गया

काश! खुशबू उसकी भी हर गली में घूमती
वह वनों का फूल था वन में ही बिखर गया।

(दो)

चल रही है आजकल कैसी हवा, है क्या छुपा
खो गया कितना यहाँ क्या-क्या बचा, है क्या छुपा

झोपड़ी की बात हो तो ध्यान किसका जाएगा?
इक भवन निर्माण में कितना लगा, है क्या छुपा

दौड़ कर आगे निकल जाऊँ तो सबको ज्ञात है
बद्दुआ देता है या देता दुआ, है क्या छुपा

आँख भर देखूँ या उसको फेफड़ों में भर लूँ मैं
दिल में उठते दर्द का हो क्या दवा, है क्या छुपा

माँग पूरी हो तो फागुन से मुहब्बत माँग लूँ
दे रहा हो जब वही मौसम सज़ा, है क्या छुपा



चाँद आकर रोज़ छत पर बैठ जाता है मेरी
मिल रहा है मुझसे वो कितनी दफ़ा,
है क्या छुपा।

(तीन)

प्यारा-सा संसार है पर माँ नहीं है
हर तरफ़ झनकार है पर माँ नहीं है

सूने घर में आना-जाना अब भी है पर
आँसुओं की धार है पर माँ नहीं है

वो बुलाते हैं चली जाती हूँ अक्सर
आपसी व्यवहार है पर माँ नहीं है

आसनी पूजा की उसको ढूँढती है
आरती तैयार है पर माँ नहीं है

स्वप्न में तो रोज़ ही मिलती है आकर
इक अजब-सा तार है, पर माँ नहीं है।

(चार)

बड़ी उल्टी कहानी कर रही हूँ
मैं अब भी बदज़ुबानी कर रही हूँ

गई हूँ माँ पे सब कहने लगे हैं
वही बातें पुरानी कर रही हूँ

बिना ग़लती ही शर्मिन्दा बहुत हूँ
मैं खुद को पानी-पानी कर रही हूँ
तुम्हारे वास्ते है झूठ पर मैं
किसी का हक़बयानी कर रही हूँ

तुम्हें हरियालियों से प्रेम है तो
लो, अपना रंग धानी कर रही हूँ।

(पाँच)

किधर से क्या-क्या खनक रहा है
खगों-सा ये मन चहक रहा है

किसी की आँखें चमक रही हैं
किसी का चेहरा दमक रहा है

अलग-से क़िस्से, अलग-सी दुनिया
नया बटोही भटक रहा है

ख़ुदा से बाग़ी, ख़ुदा से मतलब
तभी तो रिश्ता चटक रहा है

ज़रा-सी है कुछ वजह या यूँ ही
तुम्हारा ग़ुस्सा भड़क रहा है

किसी का काँधा, कहीं निशाना
वो श्रेय ऐसे लपक रहा है

न पास आए, न कुछ छुआ है
मिलन का पहिया सरक रहा है। ❑

सम्पर्क : मो. 9546333084, ई-मेल : bhavna.201120@gmail.com

Ajkal_October_2022.indd 34 27-09-2022 13:58:21

● कहानी



तीसरी बेटी

गोविन्द उपाध्याय

श्रीकांत भाई गुझिया और दही-बड़े की दो प्लेटों पर हाथ साफ़ करने के बाद अब चिप्स कुतरने में लगे थे। उन्हें गरमागरम कॉफ़ी का इंतज़ार था। बीच-बीच में वे बतियाने का प्रयास भी कर रहे थे, "तुम्हें तो मालूम ही है गोपाल, मैं कहीं नहीं जाता लेकिन बहू के हाथ के दही-बड़े का मोह नहीं त्याग पाता हूँ। आज गंगा मेला था न...। मुझे मालूम था कि दही-बड़े बने होंगे। थोड़ी हरारत थी। बिटिया मना भी कर रही थी पर मेरा मन नहीं माना। मुझे मालूम था कि तुम मेरा इंतज़ार कर रहे होगे।"

यह बिलकुल सही बात थी। दो घंटे पहले ही विभा ने कहा था, "लगता है इस बार श्रीकांत भाई साहब नहीं आएँगे। अब अगली बार से ये सब ताम-झाम बन्द कर दूँगी। बच्चे अब पास में हैं नहीं। आपको कुछ खाना नहीं है। बेकार ही इतना परेशान होती हूँ।"

मैंने विभा की तरफ़ मुस्कुराते हुए देखा, "धैर्य रखो...। श्रीकांत भाई को आज यहाँ आने से कोई नहीं रोक सकता है। कहीं व्यस्त हो गए होंगे...।"

उसके थोड़ी देर बाद ही उनकी मोपेड की फट-फट सुनाई दी। विभा फुर्ती से मुख्यद्वार की तरफ़ भागी, "लगता है भाई साहब आ गए...।"

दोनों एक साथ ही कमरे में दाख़िल हुए। विभा उन्हें बता रही थी, "भाई साहब, हम आपका इंतज़ार ही कर रहे थे।"

प्रत्युत्तर में श्रीकांत भाई हो...हो... हँसने लगे। उनका शरीर भारी होता जा रहा था और घुटने में स्थाई रूप से दर्द बना रहता था। उन्हें गठिया की शिकायत थी। दही और मीठा बन्द था। वे परहेज़ का पालन भी सख़्ती से करते थे, किन्तु विभा की गुझिया और दही-बड़े के सामने उनकी सारी सख़्ती पिघल जाती थी। मुझे ठीक से याद नहीं कि यह सिलसिला कब से शुरू हुआ था। शायद पच्चीस या फिर तीस साल....।

श्रीकांत भाई मुझसे दस-बारह साल बड़े थे। जब मैं छोटा था, तब वह मेरे पड़ोसी हुआ करते थे। हम दोनों के पिता रेलवे में नौकरी करते थे। पिता की अचानक मृत्यु के बाद अनुकंपा के आधार पर श्रीकांत भाई को भी रेलवे में नौकरी मिल गई थी। मेरे सामने ही उनका विवाह हुआ था। अम्मा की मानें तो उनकी माताजी ने ही मुझे पाला-पोसा था। अम्मा उन्हें जिज्जी कहती थीं और मैं उन्हें काकी कहता था।

अम्मा उन्हें हमेशा याद करती थीं, "बेटवा... कोई नहीं था हमारे आगे-पीछे। पहिलौठी का बच्चा...। हमको कुछ मालूम ही नहीं था। तब जिज्जी साक्षात् देवी बनकर आ गईं और हमार उद्धार कर दिया।"

यह संयोग ही कहा जाएगा कि आगे चलकर मुझे भी रेलवे में ही नौकरी मिल गई और श्रीकांत भाई के साथ हमारा सम्पर्क बना रहा।

समय के साथ परिवार बिखर जाता है। अधिकांश लोगों के साथ ऐसा ही होता है। नौकरी के चक्कर में भाई-बन्धु दूसरे शहर में जा बसते हैं। फिर दूरियाँ बढ़ती जाती हैं। सुख-दु:ख पारिवारिक न होकर निजी हो जाता है। मेरे साथ भी यही हुआ था पर हम दोनों इसी शहर में रह गए थे। उनके लिए मैं सदा छोटे भाई जैसा रहा हूँ। श्रीकांत भाई आज भी मेरे घर से मात्र तीन किलोमीटर दूर थे। यही कारण है कि हमारे आत्मिक सम्बन्ध अभी भी बने हुए थे।

समय तेज़ी से भागता है। सुखी दिनों के पंख होते हैं और कठिन समय कीड़े के समान होता है जो धीरे-धीरे रेंगता है। हम सबके साथ ऐसा होता है। श्रीकांत भाई की तीन बेटियाँ थीं। वह तो दो के बाद ही पूर्ण विराम लगा देना चाहते थे, "बेटे की लालसा में परिवार बढ़ाने से बड़ी बेवकूफ़ी दूसरी नहीं होगी। अभी अम्मा, बाबूजी...सब दबाव बना रहे हैं लेकिन बाद में सब कुछ खुद झेलना पड़ता है। सारी लड़ाई अकेले लड़नी पड़ती है।"

सभी की बात को श्रीकांत भाई हँसी में उड़ा सकते थे, पर पत्नी की बात भला कैसे टाल देते, "बस एक बार और... मेरा मन कह रहा है, इस बार बेटा ही होगा।"

अम्मा ने भी वीटो लगा दिया, "ए सिरीकांत !.. हमेशा अपना ही नहीं झोंका जाता है। कभी-कभार दूसरे की भी सुन लिया जाता है। हमको भी भोले बाबा दू बार सपने में दिखे हैं। तुम्हारे पेट में आने से पहले भी भोले बाबा हमारे सपने में कई बार आए थे।"

श्रीकांत भाई ढीले पड़ गए। इस बात को उनकी अम्मा ने कई लोगों से बताया, "इस बार बहू को बेटा ही होगा। भोले बाबा का आशीर्वाद है।"

मैंने भी सुना। उनकी बात सुनकर हँस दिया, "यदि फिर बेटी हो गई तो...? भाई तो फेंचकूर फेंक देंगे, पर भोले बाबा का कुछ नहीं बिगड़ने वाला है।"

मेरी बात सुनकर श्रीकांत की माताजी का चेहरा फक्क हो गया। दूसरे पल ही उन्होंने शब्दों से मेरी हत्या शुरू कर दी। उन्हें जितनी भी गालियाँ याद थीं, उन्हें दनादन मुझ पर फेंकना शुरू कर दिया। पहले

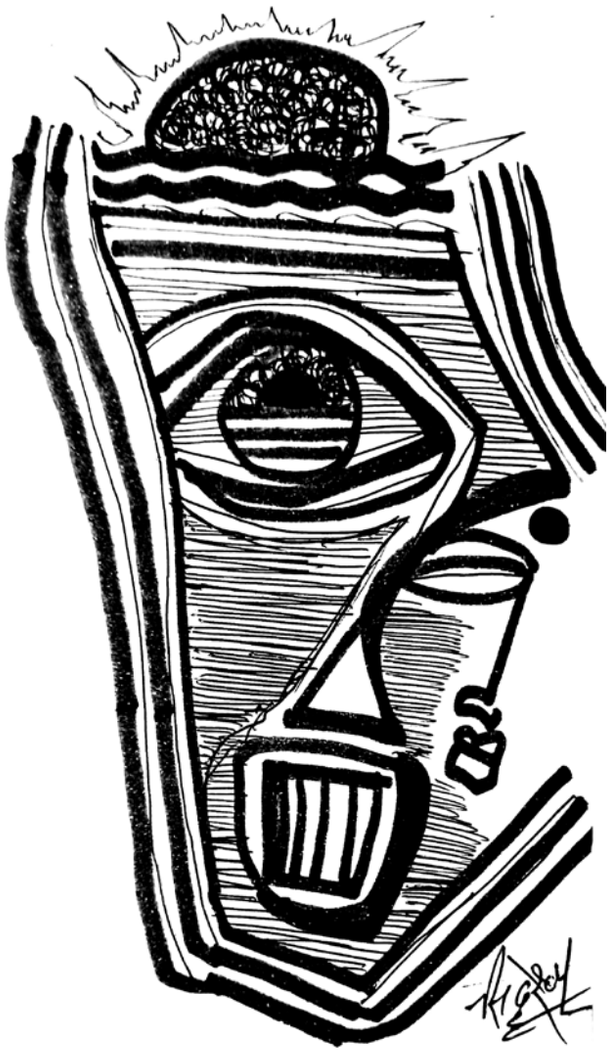
सम्पर्क : मो. 9651670106, ई-मेल : govindupadhyay78gmail.com

Ajkal_October_2022.indd 35 27-09-2022 13:58:21

तो मुझे समझ नहीं आया और जब बात मेरे मोटे दिमाग़ में आयी तो मैंने वहाँ से खिसकना ही बेहतर समझा, 'भाग ले बेटा गोपाल, ग़लती तो हो ही गई है।'

श्रीकांत भाई आज भी याद करते हैं तो मुस्कुराते हैं, "अम्मा मरते दम तक तीसरी बेटी के पैदा होने का दोषी गोपाल को ही मानती रही हैं।"

जिस दिन तीसरी बेटी पैदा हुई भाभी की आँखों से आँसू रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे। अम्मा तो छाती पीट-पीट कर मुझे गरिया रही थीं, "अरे गोपलवा की काली जुबान का किया-धरा है। अरे उसके मेहरारू की कोख से भी लड़का नहीं पैदा होगा...।"



काफ़ी समय बाद मैंने उनसे पूछा भी था, "क्या काकी...! एक बार ग़लती से मेरे मुँह से निकल गया तो सारा दोष मेरा...। और भोले बाबा ने जो कहकर धोखा दे दिया, उनको तो आप कुछ नहीं कहती हैं...!"

काकी ने जवाब देने की जगह मुँह बिचकाकर सिर दूसरी तरफ़ घुमा लिया था।

जब मेरा पहला बच्चा पैदा हुआ तो काकी बहुत याद आईं। अखिल के पैदा होने से पहले मैंने विभा को काकी के श्राप के बारे में बताया था। विभा हँसती थी, "कुछ भी हो, पर स्वस्थ हो... लायक़ हो ...। बेटा ही हुआ और सारी ज़िन्दगी उसे बेताल की तरह ढोना पड़े, तो किस काम का...। वैसे भी बच्चे अब पक्षी जैसे हैं। पंख उगे ...और फुर्र..।"

विभा की बात सही थी। अखिल दिल्ली में था तो निखिल पूना में... सब अपनी-अपनी दुनिया में मगन थे।

विभा कॉफ़ी लेकर आ गई थी। श्रीकांत भाई कप पकड़ते हुए बोले, "लाओ बच्चे...। जब तक जीवन है, तभी तक मिलना–जुलना है। धीरे-धीरे शरीर के सारे अंग शिथिल होते जा रहे हैं। कब ऊपर वाले का बुलावा आ जाए। संध्या आते समय बीस हिदायत दी, "ज़्यादा मत खा लीजिएगा। नहीं तो कल से दर्द शुरू हो जाएगा। उसकी बात भी सही है। मुझे कराहता देखकर उसे तकलीफ़ होती है।"

श्रीकांत भाई ने सेवानिवृत्ति के बाद एक छोटा-सा घर बना लिया था। तीनों बेटियों का विवाह कर चुके थे। तीनों बेटियों का विवाह हो या भाभी की बीमारी, मैं पूरी निष्ठा के साथ उनसे जुड़ा रहा। बड़ी बेटी का रंग दबा हुआ था। उसके विवाह में थोड़ी कठिनाई आ रही थी। श्रीकांत भाई परेशान रहने लगे थे। वो चाहते थे कि उसकी शादी इसी शहर में हो जाए पर सफलता नहीं मिल पाई। मैंने ही कहा था, "भाई !.. जहाँ भी योग्य लड़का मिले नि:संकोच शादी करें। अब दूरी कोई मायने नहीं रखती है। मेरी बात उनकी समझ में आ गई और बहुत आसानी से उसका विवाह सम्पन्न हो गया।

मझली बेटी का विवाह तो उन्होंने इसी शहर में किया था। उसका पूरा परिवार इसी शहर में था पर दामाद का स्थानांतरण दूसरे शहर में हो गया और मझली बेटी भी उनसे दूर हो गई। भाभी बीमार रहने लगी थीं। उन्हें बेटियों का दूर होना अखरता था, "अब चाहे जो हो जाए, छुटकी का इसी शहर में बियाह करूँगी। ताकि मौक़े-बेमौक़े हमारे पास मौजूद रह सके।"

इस बार श्रीकांत भाई भी पत्नी के पक्ष में खड़े थे, "तुम्हारी भाभी सही कह रही हैं। भाभी को देख ही रहे हो। शिथिल हो चुकी हैं। अब उम्र का प्रभाव मुझ पर भी पड़ ही रहा है। ऐसी स्थिति में कोई बच्चा तो यहाँ आस-पास में होना ही चाहिए। भाई तुम भी प्रयास करो। छुटकी की शादी हो जाए तो मैं अपनी ज़िम्मेदारी से मुक्त हो जाऊँ।"

कुछ चीज़ें भावनात्मक होती हैं। उस पर बहस करना बेवकूफ़ी था। जल्द ही मुझे एक परिवार मिल गया। मैंने श्रीकांतजी से बात किया तो खुशी से उछल पड़े, "अरे मैं किशोरीजी को अच्छी तरह से जानता हूँ। बहुत सज्जन आदमी हैं। इसे कहते हैं चिराग़ तले अन्धेरा। बताइए न हम इधर-उधर भटक रहे थे। बात चलाइए, हमें पूरा विश्वास है कि हम लोगों को सफलता मिलेगी।"

किशोरी लाल को मैं भी सज्जन व्यक्ति ही समझता था। माथे पर सफ़ेद चंदन का टीका और गले में छोटे रुद्राक्ष की माला जिनके बीच-बीच में सोने से जड़ी मोतियाँ लगी थीं। गौर वर्ण और दाढ़ी-मूँछ विहीन भव्य चेहरा...।

मैं किशोरी लाल को लम्बे अर्से से जानता था। उनकी पत्नी और विभा का मायका एक ही मोहल्ले में था। विभा उन्हें बड़ी बहन की तरह सम्मान देती थीं लेकिन जब उनसे बेटे के विवाह के सन्दर्भ में बात

Ajkal_October_2022.indd 36 27-09-2022 13:58:22

किया तो उनकी सोच उनके व्यक्तित्व के विपरीत थी। लालच की बहुत बड़ी पोटली सीने से दबाकर बैठे थे। जीवन की तमाम अतृप्त इच्छाओं को बेटे के विवाह में पूरा कर लेना चाहते थे। ख़ुद रेलवे में ख़लासी थे। बाद में पदोन्नति पाकर स्टोरकीपर हो गए थे। रेलवे कॉलोनी के दो कमरे के सरकारी आवास में रहते थे। लड़का बिजली विभाग में वायरमैन था। छोटी पोस्ट थी। स्थानांतरण की सम्भावना बहुत कम थी।

मैंने श्रीकांत भाई को साफ़-साफ़ बता दिया, "भाई, मुँह तो खोल नहीं रहे हैं, लेकिन बातों-बातों में सब बता दिए हैं। शादी बहुत महँगी पड़ेगी। नगद की बात तो अभी मालूम ही नहीं है। कार से लेकर एसी तक सब चाहिए...।"

श्रीकांत भाई आँख बन्द करके कुछ क्षण सोचते रहे। फिर बहुत मायूसी से बोले, "कोशिश करके देखो गोपाल...। शायद बात बन जाए। सरकारी नौकरी वाले लड़के मिलते कहाँ हैं। रिटायरमेंट के बाद जो कुछ मिला उसमें एक बड़ा हिस्सा मकान के ऊपर ख़र्च हो गया है। अभी भी इतना है कि सम्मान के साथ उसका विवाह किया जा सके लेकिन फिर भी एक सीमा तो है ही।"

मैं विभा को लेकर गया। बस एक ही चारा था कि किशोरी लाल की पत्नी से विवाह के सन्दर्भ में खुलकर बात किया जाए और उन्हें किसी तरह इस विवाह के लिए मना लिया जाए लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ। उन्होंने विभा से साफ़ शब्दों में कह दिया, "हम कुछ भी नहीं कर पाएँगे विभा...। ये मामला उन्हीं का है। लड़का बत्तीस-तैंतीस का हो गया है। पता नहीं कौन-सी जिलेबी बना रहे हैं। ओर-छोर ही नहीं समझ आता है। गोपाल बाबू से बोलो उन्हीं से बात करें।"

आख़िरकार किशोरी लाल पर मैंने दबाव बनाने की कोशिश किया, "बहुत बढ़िया रिश्ता है भाई साहब। लड़की सुन्दर पढ़ी-लिखी है। बी-एससी, बी-एड है। आज नहीं तो कल वह भी किसी सरकारी स्कूल में लग ही जाएगी। श्रीकांत भाई को मैं होश सम्भालने से जानता हूँ। आप भी काफ़ी दिनों से जानते हैं। हमारी और आपकी तरह उनका भी बहुत लम्बा समय इस रेलवे कॉलोनी में ही कटा है...।"

मेरी बात बीच में ही काटकर किशोरी लाल हँसते हुए बोले, "अरे गोपाल बाबू ...यह सब बताने की ज़रूरत नहीं है। मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ। लड़की को भी देख रहा हूँ। मुझे रिश्ते से कोई एतराज़ नहीं है पर मेरी एक शर्त है। आप उनसे बोलिए कि मकान लड़की के नाम से कर दें ताकि उनके न रहने पर कोई खिच-खिच न हो।"

मुझे बहुत तगड़ा झटका लगा था। चार सौ चालीस वोल्ट वाला ..। तो इतनी गन्दी सोच के आदमी हैं किशोरी लाल..। मेरे लिए अब उनके पास बैठना कठिन लग रहा था। मैं बिना कोई प्रतिक्रिया दिए, चुपचाप उठकर वहाँ से चला आया। श्रीकांत भाई से सारी बात बता दी। बोले तो वे भी कुछ नहीं, लेकिन उनकी आँखों के कोरों पर पानी इकट्ठा होते देख लिया था।

छुटकी यानी संध्या की शादी छह महीने बाद हो गई। जैसा श्रीकांत भाई और भाभी चाहते थे, सब कुछ वैसा ही था। लड़का सरकारी स्कूल में अध्यापक था। उसका परिवार दूसरे शहर में था। श्रीकांत भाई की मझली बेटी ने यह रिश्ता लगाया था। लड़का बहुत ही सीधा-सादा था। कुछ दिन बाद ही संध्या को भी नौकरी मिल गई थी।

श्रीकांत भाई ही एक दिन बताने लगे, "अच्छा हुआ गोपाल हम लोग किशोरी लाल के चक्कर में नहीं फँसे। कल पूरे परिवार को पुलिस उठाकर ले गई है। उसकी बहू ने दहेज प्रताड़ना का केस किया है।"

श्रीकांत भाई के सुख-चैन का समय बहुत छोटा रहा। भाभी बहुत लम्बा साथ नहीं दे पाईं। संध्या के विवाह के तीन साल बाद उनकी मृत्यु हो गई। तीनो बेटियों को पिता की चिन्ता सताने लगी थी। माँ की मृत्यु के बाद के कर्मकांडों के मध्य इस बात को लेकर भी मंथन हो रहा था, "बाबूजी को इस उम्र में अकेला नहीं छोड़ा जा सकता है। अब हमें उनकी ज़िम्मेदारी उठानी होगी। इसलिए दो ही विकल्प बचा है। पहला यह कि हम बहनों में से कोई एक बाबूजी के पास आकर रहे और दूसरा यह कि बाबूजी हम तीनों में से किसी एक के पास आकर रहें।"

हर समस्या का कोई-न-कोई निदान तो होता है। संध्या ने ही कहा, "आप दोनों में से तो कोई परिवार छोड़कर यहाँ आ नहीं सकता है। इस उम्र में इस शहर और यह घर छोड़कर बाबूजी किसी के पास जाने से रहे। अगर आप दोनों की सहमति हो तो मैं ही उनके पास चली जाती हूँ।"

बहनों ने संध्या की बात पर प्रसन्नता प्रगट की। संध्या, पति के साथ पिता के घर आ गई। श्रीकांत भाई को सुकून की दो रोटी मिलने लगी और संध्या की दो वर्ष की बेटी के साथ समय कैसे कट जाता है, उन्हें पता ही नहीं चलता है।

श्रीकांत भाई अपने जीवन से पूर्ण संतुष्ट हैं। मैंने एक गहरी साँस खींचते हुए श्रीकांत भाई की तरफ़ देखा। वह विभा से बतियाने में व्यस्त थे। विभा उन्हें अपने बच्चों के बारे में बता रही थी , "भाई साहब दोनों हफ़्तों फ़ोन नहीं करते हैं। उन्हें मानो हमारी कोई चिन्ता ही नहीं है। यहाँ तो बस सोते-जागते उनकी ही चिन्ता सताती रहती है कि पता नहीं कैसे रहते हैं। समय से खाना-पीना मिलता है भी कि नहीं। अखिल कुछ दिन पहले आया था। बहुत दुबला लग रहा था।"

श्रीकांत भाई सिर हिलाते हुए बोले, "बेकार चिन्ता करती हो। उन्हें बच्चा समझना छोड़ दो। वे अब बड़े हो गए हैं और अपनी देख-भाल खुद कर सकते हैं। मेरे साथ तो उल्टा है। रोज़ शाम को बड़ी और मझली बेटी फ़ोन करके हाल-चाल पूछती हैं। जिस दिन दोनों में से किसी का फ़ोन नहीं आता है तो मेरा ही जी घबराने लगता है। मैं संध्या से कहता हूँ कि फ़ोन करके पूछे कि सब ठीक तो है न...?"

तभी श्रीकांत भाई का मोबाइल बजने लगा। श्रीकांत भाई मोबाइल को देखते हुए बोले, "संध्या का फ़ोन है।" उन्होंने बेटी को फ़ोन पर हँसते हुए कहा, "बस निकल रहा हूँ बच्चा। गोपाल के पास आता हूँ तो क़िस्सों की पोटली खुलने लगती है। तमाम पुरानी बातें ताज़ा हो जाती हैं।"

साढ़े सात बज रहे थे। वे उठे तो विभा ने पाँव छूकर आशीर्वाद लिया और मैं उन्हें बाहर तक छोड़ने आया। उन्होंने मोपेड स्टार्ट किया और बड़े आराम से बैठ गए, "अच्छा गोपाल चलते हैं...। तुम बहुत सोचने लगे हो। मस्त रहा करो। मैंने तो अपने जीवन से यही समझा है कि जो भी होगा, अच्छा ही होगा। "

उनकी मोपेड आगे बढ़ गई और धीरे-धीरे मेरी आँखों से ओझल होती चली गई। ❑

Ajkal_October_2022.indd 37 27-09-2022 13:58:22

● **साक्षात्कार**



हम अपनी पारी खेल चुके
ईमानदारी से, कोई अफ़सोस नहीं

(शेखर जोशी *से* **नवीन जोशी** *की बातचीत की पहली कड़ी)*

10 सितम्बर, 1932 को ओलिया गाँव (अल्मोड़ा, उत्तराखंड) में जन्मे शेखर जोशी को छोटी उम्र में ही माँ के निधन के बाद सुदूर कीकर (राजस्थान) में मामा के पास जाना पड़ा था। पहाड़ों की सुरम्य गोद से सीधे मरुभूमि जा पहुँचे बालक शेखर के भीतर पहाड़, प्रकृति और वहाँ के लोग अपने सुन्दर, मधुर लेकिन कठोर यथार्थ के साथ रचे-बसे रहे। कालान्तर में वे आजीविका के क्रम में दिल्ली होते हुए इलाहाबाद पहुँचे। साहित्यिक संस्कार उन्हें बचपन में ही ननिहाल से मिल गए थे जो दिल्ली में न केवल विकसित हुए, बल्कि वहाँ होटल-कर्मचारियों के संगठन के सम्पर्क में आने के बाद जीवन के यथार्थ और निम्न एवं मध्य वर्ग की जद्दोजहद से उनका सीधा साक्षात्कार हुआ। 1955 में जब वे इलाहाबाद के ईएमई कारख़ाने में तैनात हुए तो हिन्दी साहित्य के सबसे सक्रिय, सचेत और समृद्ध इस शहर ने उनके भीतर के कहानीकार को पूरी तरह उत्प्रेरित कर दिया। उधर, कारख़ाने में दिनभर की कठिन नौकरी ने उन्हें श्रमिकों और कल-कारख़ानों की उस दुनिया से गहन रूप से जोड़ दिया जिसका कोई आत्मीय स्पर्श हिन्दी कहानी को तब तक हुआ नहीं था।



इस तरह पहाड़ और कारख़ाने, श्रमिक और निम्न-मध्य वर्ग का आत्मीय किन्तु संघर्ष एवं अंतर्विरोधों से भरा संसार उनकी रचना-भूमि बना। पहाड़ के विविध पक्षों पर लिखने वाले उनसे पहले और बाद में भी कई साहित्यकार हुए, हालाँकि उनके जैसा पहाड़ अन्य लेखकों की रचनाओं से अछूता ही रहा, लेकिन श्रमिकों और कारख़ानों के यथार्थ पर यादगार कहानियाँ लिखने वाले हिन्दी में वे अकेले ही हुए। इन विषयों पर आज भी नहीं लिखा जा रहा या उल्लेखनीय कहानियाँ सामने नहीं आ रहीं। 'उस्ताद', 'बदबू', 'सीढ़ियाँ' और 'मेंटल' जैसी कहानियाँ वे 1960 तक लिख चुके थे। आज छह दशकों से भी अधिक समय बीत जाने पर भी ये कथाएँ न केवल याद की जाती हैं, बल्कि अक्सर उद्धृत भी की जाती हैं।

शेखर जोशी ने अपेक्षाकृत कम कहानियाँ लिखीं लेकिन सीधी-सरल भाषा, चमत्कारविहीन मौन-सी शैली और दमदार कथ्य ने उन्हें हिन्दी कहानी के शिखर पर पहुँचाया। उपन्यास उन्होंने एक भी नहीं लिखा। यदा-कदा कविताएँ और संस्मरण अवश्य वे लिखते रहे। नब्बे वर्ष की उम्र में भी उनकी रचनात्मक सक्रियता जारी है। आँखों की असाध्य बीमारी के कारण पढ़ना अत्यन्त कठिन हो गया है और लिखना काग़ज़ पर उँगलियों के सहारे क़लम घसीट कर ही हो पाता है। हाल में उनकी दो पुस्तकें 'मेरा ओलिया गाँव' (पहाड़ में बिताए बचपन की स्मृतियाँ) और 'पार्वती' (कविता-संग्रह) प्रकाशित हुए हैं। अपने वरिष्ठ साथी-लेखकों के बारे में उनके संस्मरणों की एक किताब प्रकाशनाधीन है। स्मृति उनकी बहुत अच्छी है। विभिन्न जीवन-प्रसंग ही नहीं, अपनी तथा प्रिय कवियों की कविताएँ वे बिना अटके सुना जाते हैं।

यह बातचीत लखनऊ में जून-मध्य में होनी तय थी लेकिन कुछ स्वास्थ्य समस्या के कारण उन्हें पुणे में बेटी के पास ही रुक जाना पड़ा। फ़ोन पर सुनने की समस्या थी, इसलिए सवाल उन्हें लिखकर भेजे गए जिनके जवाब उनकी पुत्री ***कृष्णा पन्त*** *ने फ़ोन पर रिकॉर्ड करके लौटाए। इस प्रस्तुति में बराबर का श्रेय* ***कृष्णा*** *का भी है...*

सम्पर्क : *मो. 9793702888, ई-मेल : naveengjoshi@gmail.com*

Ajkal_October_2022.indd 38 27-09-2022 13:58:22

प्रश्न- कारख़ानों और श्रमिक वर्ग के जीवन के बारे में कहानियाँ लिखने की तरफ़ ध्यान कैसे गया?

उत्तर- जब मैं अक्तूबर 1955 में इलाहाबाद में पहली बार 'कहानी' पत्रिका के सम्पादक भैरव प्रसाद गुप्त से मिला, तब 'कहानी' का वार्षिकांक प्रकाशित हो चुका था। 'कहानी' के वार्षिकांक इतने महत्वपूर्ण होते थे कि इन विशेषांकों के लिए लेखक अपनी श्रेष्ठ कहानी रखे रहते थे। इन विशेषांकों के कारण कहानी विधा केन्द्र में आ गई थी। तो, भैरवजी ने मुझसे कहा कि नया विशेषांक देख लिया हो तो अपनी पाठकीय प्रतिक्रिया भेजना। मैंने विस्तृत पत्र लिखा, अलग-अलग कहानियों पर, जो मुझे अच्छी लगी थीं, अपनी राय दी। फिर मैंने एक टिप्पणी ये की, कि इस विशेषांक में जो कमी खलती है, वह ये कि लेखक जहाँ उच्च वर्ग के ड्राइंग रूम, मध्यम वर्ग की गृहस्थी, खेती-किसानी और निम्न वर्ग की झोपड़ियों तक पहुँच जाता है और वेश्याओं के कोठों में जाने में भी नहीं हिचकता, वहाँ एक वर्ग को वह छोड़ देता है। ये केवल इस विशेषांक की बात नहीं, हिन्दी कथा साहित्य में इस वर्ग की अंतरंग कहानियाँ बिल्कुल नहीं हैं। वह वर्ग है औद्योगिक क्षेत्रों में काम करने वाले कामगारों का, उस परिवेश का, उनकी बोली-बानी का और उनके आपसी व्यवहार का। भैरवजी बहुत स्पष्ट वक्ता थे। उन्होंने थोड़े ऊँचे स्वर में कहा-तुम दूसरों को बहुत नसीहत दे रहे हो। तुमने बताया कि चार साल तक हर तरह के कारीगर के साथ में तुमने ट्रेनिंग पीरियड में काम सीखा है। अब भी तुम दिन के आठ घंटे उनके सम्पर्क में रहते हो। तो, तुम खुद क्यों नहीं लिखते इस बारे में? मुझे लगा कि भैरवजी बहुत सही बात कह रहे हैं। तब मैंने औद्योगिक जीवन की जो पहली कहानी लिखी उसका शीर्षक था 'उस्ताद'। तब तक जो स्थानीय मित्र हो गए थे, उन लोगों को सुनाई, दुष्यन्त, मार्कण्डेय, कमलेश्वर, अमरकान्त वग़ैरह। उन लोगों को बहुत अच्छी लगी कहानी, क्योंकि एक बिल्कुल नई दुनिया थी, नया परिवेश था, नई भाषा थी।

उसी बीच में उपेन्द्रनाथ अश्क द्वारा सम्पादित साहित्य संकलन 'संकेत' में मेरी 'दाज्यू' कहानी छपी थी। अमृत राय ने वह कहानी पढ़ी होगी। उन्होंने भी बालकृष्ण राव के साथ मिलकर 'हंस' का एक साहित्य संकलन निकालने की योजना बनाई थी। उनके आग्रह पर मैंने उत्साह में अपनी 'उस्ताद' कहानी उनको भेज दी। फिर मैं गाँव चला गया। कुछ दिन बाद गाँव में ही मुझे अमृत राय का पत्र मिला। आप दाद देंगे अमृत राय के साहित्य-विवेक और उनकी सम्पादकीय पारखी दृष्टि की कि, उन्होंने मुझे लिखा था, "शेखर, तुम्हारी कहानी पढ़ी, अच्छी है लेकिन मैं तुमसे उससे भी अच्छी कहानी की अपेक्षा करता हूँ।" मुझे बुरा नहीं लगा, बल्कि मुझमें एक प्रेरणा जैसी जगी कि देखो कोई सम्पादक मुझसे और अच्छी कहानी की अपेक्षा कर रहा है। मैंने गाँव में ही बैठकर एक कहानी पूरी की जिसका शीर्षक 'बदबू' था और अमृत राय को भेज दी। हफ़्तेभर के अंदर अमृत राय का छोटा-सा पत्र आया कि शेखर अच्छी कहानी के लिए बधाई। इसे प्रेस में दे दिया है। तो, इस तरह से इस क्षेत्र की कहानियों को लिखने की मेरी शुरुआत हुई।

वह आक्रामक ट्रेड यूनियन और श्रम नीतियों के विरुद्ध असंतोष का दौर भी था। यह पक्ष कहानीकारों से क्यों छूटा, जबकि किसानों और गाँवों के बारे में काफ़ी लिखा जा रहा था?

जहाँ तक मैं समझता हूँ, इसका कारण यह था कि जो वर्ग लेखन की ओर प्रवृत्त हो रहा था उसका कल-कारख़ानों के लोगों से आपसी सम्पर्क बिल्कुल नहीं था। अगर वो किसानों के बारे में, गाँव के बारे में, खेती के बारे में लिख रहे थे तो वह भी शहर में रहने के बाद उस नॉस्टेल्जिया को रिपीट कर रहे थे जो उन्होंने अपने गाँवों में रहते हुए देखा था। दूसरा, ऐसा नहीं है कि हड़ताल वग़ैरह के बारे में लिखा नहीं जा रहा था लेकिन एक सतही तौर पर लाल झण्डा दिखाकर, 'इंक़लाब ज़िन्दाबाद' करते हुए। आपको याद होगा कि भीष्म साहनी की कहानी 'भाग्य रेखा' में ज्योतिषी को हाथ दिखा रहा है कोई आदमी और ज्योतिषी उसके बारे में काफ़ी नकारात्मक बातें बता रहा है। तभी सामने से एक जुलूस निकल रहा है श्रमिकों का और नारेबाज़ी हो रही है। तो, जो आदमी हाथ दिखवा रहा है, वह ज्योतिषी से कहता है, ज़रा फिर से देखो। तो, सांकेतिक रूप में लेखक की श्रमिकों के प्रति पक्षधरता दिखती है लेकिन जो मैं कहना चाह रहा था वो ये कि फ़ैक्ट्री के अंदर का माहौल, वहाँ की बोली-बानी, काम करने के तौर-तरीक़े, ईर्ष्या-द्वेष, ये चीज़ें नहीं आ रही थीं, चूँकि सम्पर्क नहीं था कोई। मेरा सौभाग्य यह था कि मैं परिस्थितिया वश उस तरह की ज़िन्दगी में शामिल हो गया था।

कुछ आलोचकों ने लिखा कि आपकी कहानियों के श्रमिक आंदोलन नहीं करते, हड़ताल नहीं करते, ट्रेड यूनियन का ज़िक्र बहुत कम होता है, मालिकों और पूँजीपतियों से टकराव के प्रसंग नहीं आते। आप क्या कहेंगे?

दो तरह के समीक्षक होते हैं। एक, जो लाउड कथन के पक्षधर होते हैं और उनको ऐसा लगता है कि पाठक इतना जागरूक नहीं है कि अंडरटोन में लिखी गई कहानियों को समझ सके। और, मेरा मानना ये था कि बिना बहुत लाउड हुए जो शोषण हो रहा है, जो संघर्ष हो रहा है, जो जय-पराजय हो रही है, उसको मैं चित्रित कर सकूँ। तो, हो सकता है कि कुछ लोगों का ऐसा सोचना हो कि मैं बहुत वोकल नहीं हूँ। और, मैं होना भी नहीं चाहता था क्योंकि मैं बहुत ही अंडरटोन में बात करके अपने कथ्य को सम्प्रेषित करना चाहता था।

आपके बाद भी इस तरह की कहानियाँ नहीं या बहुत कम लिखी गईं। आज तो श्रमिकों का हाल किसानों से भी बुरा है, फिर भी कथाकार उस बारे में लगभग नहीं लिख पा रहे। आपको क्या कारण लगते हैं?

मेरे बाद (श्रम जगत के बारे में) लिखने वालों में दो प्रमुख नाम हैं, एक इस्राइल और दूसरे सतीश जमाली। इन दोनों का सम्पर्क औद्योगिक परिवेश से रहा या वे वहाँ के कारीगरों के सम्पर्क में रहे। इस्राइल तो पार्टी वर्कर थे और ट्रेड यूनियनों से भी जुड़े रहते थे। उन्होंने इस परिवेश की कहानियाँ लिखीं। सतीश जमाली खुद फ़ैक्ट्री में काम करते थे। वैसे अनुभव थे उनके तो उन्होंने वैसी कहानियाँ लिखीं। शायद जयनन्दन ने भी ऐसी कुछ कहानियाँ लिखीं। शकील सिद्दीक़ी एचएएल फ़ैक्ट्री में काम करते थे। उनकी रचनाओं में भी यह परिवेश अंकित है। मूल कारण यही है कि लेखकों का इस क्षेत्र से सीधा सम्पर्क नहीं रहा या बहुत कम रहा।

Ajkal_October_2022.indd 39 27-09-2022 13:58:22

आपकी कहानियों का जो क्राफ़्ट है, सीधा, सरल, बहुत कम कहने और अधिक असर डालने वाला, व्यंग्य का पुट लिए हुए, वह आपने सायास अपनाया या आपके व्यक्तित्व और स्वभाव से निकला?

आप भी अनुभव करते होंगे कि हमारे पहाड़ी ग्रामीण जीवन में जो आपसी वार्तालाप होते हैं, उसकी एक अपनी तरह की शैली होती है। उसमें व्यंग्य भी होता है, मितकथन भी होता है और कहावतों के माध्यम से बात कही जाती है। आपने पढ़ी होगी मेरी 'क़िस्सागो' कहानी, उसमें इस तरह का वातावरण है। तो, यह मुझे अपने संस्कारों से मिला है। दूसरा यह है कि मैंने बहुत अकादमिक पढ़ाई नहीं की है लेकिन स्वाध्याय से मैंने बहुत अच्छा साहित्य, देसी-विदेशी, पढ़ने का और समझने का और उसके क्राफ़्ट को जानने का प्रयत्न किया है। तो, जो ये मेरा विवेक है वह बहुत कुछ मेरे अपने अध्ययन से और मेरे जीवन के अनुभवों से आया है।

आप कैसे लिखते हैं यानी कई ड्राफ़्ट बनाते हैं या मन-ही-मन लिखकर फ़ाइनल करते हैं? एक कहानी आमतौर पर कितनी बैठकों में पूरी होती थी?

जब मैं किसी विषय पर लिखना चाहता हूँ तो मानसिक रूप से मैं उसको गूँथता हूँ और उसमें क्या बढ़ाना है, क्या घटाना है, यह सब मैं अपनी कल्पना में सोचे रहता हूँ। तो, प्राय: मैंने अपनी कहानियाँ एक ही सिटिंग में पूरी की हैं क्योंकि बहुत लम्बी कहानियाँ नहीं हैं मेरी। जो सबसे अधिक समय लेने वाली कहानी थी, वह 'कोसी का घटवार' थी जो मैंने दो या ढाई दिन की बैठक के बाद पूरी की थी। मेरा लिखने का एक और तरीक़ा था, कहानी लिखने से पहले बहुत सारे कविता-संकलन पास में रखता था और उन कविता-संकलनों को, अपने प्रिय कवियों को पढ़ता था। उसके बाद मैं गद्य की ओर अग्रसर होता था। तो, इससे पता नहीं कैसे मेरे दिमाग़ में एक ऊर्जा होती थी।

आप दिल्ली में कुछ वर्ष रहकर इलाहाबाद आए। उस दौर में दोनों शहरों के साहित्यिक माहौल में क्या फ़र्क़ था? इलाहाबाद के माहौल के बारे में बताइए, जो तब हिन्दी साहित्य का सबसे बड़ा केन्द्र था।

मेरा दिल्ली का पहला प्रवास सन् 1951 से लेकर 55 तक रहा। तब वहाँ की जो साहित्यिक गतिविधियाँ थीं, बहुत महत्वपूर्ण नहीं थीं। जो बड़े लेखक थे, जैसे जैनेन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त थे, रामधारी सिंह दिनकर थे, ये लोग ज़्यादा मिक्स-अप नहीं होते थे। जैनेन्द्रजी के घर में 'शनिवार समाज' की साहित्यिक मीटिंगें होती ज़रूर थीं। बाद में दिल्ली जो साहित्य का केन्द्र बनी वह अज्ञेय, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, श्रीकान्त वर्मा जैसे कवियों और निर्मल वर्मा, रामकुमार, भीष्म साहनी जैसे कहानीकारों के कारण बनी। गीतकार कवियों का वर्चस्व था जो कि कवि सम्मेलनों में, कवि गोष्ठियों में सस्वर पाठ करते थे। गोपाल प्रसाद व्यास जैसे हास्य-कवि थे और लोगों को काफ़ी हँसने-हँसाने का मौक़ा मिलता था। उन लोगों की संगत के कारण मैंने भी कुछ कविताएँ लिखी थीं लेकिन मेरी कविताएँ कुछ भिन्न होती थीं। उसमें एक कथातत्त्व रहता था जैसे- 'मैं मन्दिर में जाता हूँ/ उस ईश्वर को शीश नवाने जो पत्थर का गुमसुम बुत है/ कृपण कृपा से धनवानों की/ धाम बना जिसका अद्‌भुत है/ मैं जाता हूँ याचक बनकर/ वैभवपूर्ण जीवन पाने/ मैं जाता सौदागर बनकर/ चाँदी के सिक्कों के बदले अपने पापों का भुगतान चुकाने...।' तो, गीतकारों की प्रेम कविताओं से हटकर इन कविताओं को लोग ख़ूब पसन्द करते थे और तालियाँ बजाते थे। अगर मैं दिल्ली में ही रुक जाता तो तालियाँ ही बटोरता रह जाता।

मेरा सौभाग्य था कि जब हमारी ट्रेनिंग ख़त्म हुई तो पता चला कि मेरे ट्रेड के चार लोगों के लिए इलाहाबाद में वेकेंसी है। मेरा मुख्य उद्देश्य था कि इस साहित्यिक शहर में पहुँचकर कुछ सीखना, कुछ पढ़ना। राजनैतिक रूप से भी वह जागृत शहर था। इलाहाबाद आना इतना शुभ हुआ...। 'पर्वतीय जन विकास समिति' नाम की हमारी सांस्कृतिक संस्था दिल्ली में थी, उसके बुलेटिन के वार्षिकांक के लिए नन्द किशोर नौटियाल ने, जो सम्पादक मंडल में प्रमुख थे, कहा था, "शेखर तुम कहानियाँ लिखते हो, तो ऐसी कहानी लिखो जिसमें नायक होटल में काम करता हो।" तो, मैंने 'दाज्यू' कहानी लिखी थी। जब मैं इलाहाबाद पहुँचा तो एक दिन भैरवजी के कमरे में अचानक कमलेश्वर भी आ गए, जो 'साहित्यिकी' का संयोजन करते थे, जो प्रगतिशील साहित्यकारों की गोष्ठी होती थी। भैरवजी ने उनसे कहा कि ये भी कहानीकार हैं, इनकी कहानी भी तुम एजेंडे में रखो। तो, अगले महीने कमलेश्वर ने मेरी कहानी का पाठ रखा। श्रीपतजी के घर पर, ड्रमंड रोड में, बहुत बड़ी मीटिंग थी, हिन्दी और उर्दू के लोगों की सम्मिलित रूप से। वहाँ मैंने डरते-डरते 'दाज्यू' कहानी का पाठ किया। 'दाज्यू' कहानी को लोगों ने इतना सराहा कि अश्कजी ने कमलेश्वर से कहा कि "ले लो"। मैं समझा नहीं और कमलेश्वर ने पाण्डुलिपि मेरे हाथ से ले ली। बाद में पता चला कि अश्कजी एक साहित्यिक संकलन 'संकेत' निकाल रहे हैं, उसमें वह कहानी देंगे। तो, संकेत में भी 'दाज्यू' कहानी छपी और ख़ूब चर्चित हुई। उसके बाद फिर अमृत राय और बाल कृष्ण राव, जो सी. वाई. चिन्तामणि के सुपुत्र और आईसीएस अधिकारी थे, इस्तीफ़ा देकर स्वतन्त्र-लेखन के लिए इलाहाबाद में बस गए थे, उनके संयुक्त सम्पादन में 'हंस' का भी एक साहित्यिक संकलन निकलने वाला था। जैसाकि पहले बता चुका हूँ, उसके लिए 'बदबू' लिखी। उसके बाद तो सिलसिला चल निकला। 'कहानी' पत्रिका के माध्यम से भैरवजी ने मुझसे तगादा कर-कर के कहानियाँ लिखवाईं। अगले विशेषांक में 'उस्ताद' छपी। उसके अगले विशेषांक में 'कोसी का घटवार' छपी। तो, इस तरह से मुझे ऐसी जगह मिली जहाँ अपने अग्रजों से और फिर अपने समकालीनों से बहुत कुछ सीखने का मौक़ा मिला।

एक बहुत अच्छा संयोग यह हुआ कि व्हीलर बुक स्टाल के मालिक ने, पुरानी किताबों का एक विक्रय केन्द्र सिविल लाइंस में रखा। महीने में एक बार स्टॉक आता था। मैंने सस्ते दामों पर जॉन स्टेनबैक की पूरी शृंखला, काफ़्का की 'द कैसल' और भी बहुत-सी किताबें वहीं से लेकर पढ़ी। उन दिनों मॉस्को से जो साहित्य आता था, अनूदित साहित्य, मुख्य रूप से सोवियत यूनियन की भाषाओं का, बहुत सस्ते में वो किताबें मिलती थीं। मॉस्को से प्रकाशित पुस्तकों में चेखव, तुर्गनेव, मैक्सिम गोर्की, आस्त्रेवस्की, चंगेज़ आइत्मातोव के उपन्यास, माइकोवस्की, नाज़िम हिकमत और निकोला वाप्सरोव की कविताएँ पढ़ने का सुयोग मिला। इससें कुछ वर्ष पहले नेमिचन्द्र

Ajkal_October_2022.indd 40 27-09-2022 13:58:22

जैन ने सिविल लाइंस में 'आधुनिक पुस्तक भण्डार' खोलकर लोगों में अच्छी, सार्थक साहित्यिक पुस्तकें पढ़ने की नींव डाली थी। हम लोग आपस में बातें करते थे, जो अग्रज लोग थे उनकी बातें सुनते थे, इससे अच्छी समझ बनती थी। तो, इस तरह इलाहाबाद का माहौल था। निरालाजी हालाँकि बहुत स्वस्थ नहीं थे, लेकिन वहाँ थे। महादेवीजी थीं, पन्तजी थे, फ़िराक़ साहब थे तथा अमृत राय, भैरव प्रसाद गुप्त, उपेन्द्रनाथ अश्क, शमशेर बहादुर सिंह और परिमल ग्रुप में जगदीश गुप्त, जयदेव नारायण साही, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लक्ष्मीकान्त वर्मा। नए लेखकों में दुष्यन्त, मार्कण्डेय, कमलेश्वर, अमरकान्त भी आ गए थे, ज्ञान प्रकाश, उमाकान्त मालवीय... तो, ऐसा गहमागहमी का माहौल रहता था। 'शनीचरी ग्रुप' कहलाता था हमारा। शनिवार को नियमित रूप से मिलते थे। परिमल ग्रुप के लोग भी अक्सर और शनिवार को तो ज़रूर ही कॉफ़ी हाउस आते थे। अलग-अलग टेबल्स पर बैठते थे। तो, पूरा शहर साहित्यिक माहौल में रंगा हुआ था। फिर, काम करते हुए ट्रेड यूनियन में सम्पर्क हुआ और मैं अपनी ब्राँच का सेक्रेट्री बना। तो, सारे शहर की ट्रेड यूनियनों से सम्पर्क होने लगा। उसका भी बहुत कुछ असर रहा। तो, ये सब प्रेरक चीज़ें थीं इलाहाबाद में।

और, जो साहित्यिक लोगों के आपसी सम्बन्ध होते थे वो इतने मधुर होते थे, इतने आत्मीय कि मुझे याद है कि सन् साठ (1960) में हमारी शादी हुई थी और उसी वर्ष संस्कृत के विद्वान कमलेश दत्त त्रिपाठी की भी शादी हुई और एक और सज्जन की भी, जो कि श्रीकृष्ण दास की बहन के पुत्र थे। श्रीकृण दास बहुत बड़े साहित्यिक पत्रकार थे। तो, उनके घर में तीनों जोड़ों को बुलाया गया और कल्पना कीजिए कि कोई रिश्तेदारी नहीं, कोई कुछ नहीं, लेकिन निस्संतान श्रीकृष्णदास ने और सरोज भाभी ने तीनों बहुओं की गोद भरी, अक्षत और हल्दी से और सबको एक-एक साड़ी दी। तो, ये कहाँ मिलता ! प्रकाशचन्द्र गुप्त, जो कि बहुत बड़े आलोचक थे, प्रोफ़ेसर थे अंग्रेज़ी के, हेड ऑफ़ डिपार्टमेन्ट थे, उनकी पत्नी बहुत ही स्नेहिल थीं। उन्होंने हम पति-पत्नी को खाने के लिए बुलाया। मेरी पत्नी बिंदास क़िस्म की थीं। जो चीज़ अच्छी लगी, खूब मन से खा रही थीं, तो मैंने इशारे से उनको टोका। मिसेज़ गुप्त ने डाँटकर कहा, "शेखर, मैं देख रही हूँ, बहू को खाने दो ढंग से।" तो, अब सोचिए कि ये माहौल, ये आत्मीयता कैसे संस्कार दे गई हम लोगों को! अश्कजी के घर में हम लोगों की बैठकी होती थी और अश्कजी हर नए लेखक से उसकी रचना सुनकर सोचते थे कि वो भी उस तरह की चीज़ लिखें। बहुत ज़िन्दादिल आदमी थे।... ऐसा वातावरण था...। मासिक गोष्ठियाँ होती थीं और उनमें ऐसी खिँचाई होती थी कि रचना के रेशे-रेशे को तार-तार किया जाता था लेकिन कोई दुर्भावना नहीं होती थी। साहित्यिक विवेक उससे जागता था। तो, वह स्वर्ण युग था इलाहाबाद का।

परिमल और प्रगतिशील ख़ेमों के रिश्तों पर कुछ बताइए।

प्रगतिशील और परिमल ख़ेमों में जो प्रमुख विभाजन था, वो वैचारिक था। प्रगतिशील खेमे वाले मार्क्सवादी दृष्टिकोण के होते थे और परिमल वाले प्राय: या प्रच्छन्न रूप से मार्क्सवाद के विरोध में। अधिकांश लोग उसमें से लोहियावादी थे। और, दूसरा फ़र्क़ शिल्प के बारे में था कि उनका रुझान कलावादी होता था। प्रगतिशील लोग सामान्यजन से जुड़ने के लिए एक तरह की आमफ़हम भाषा और सीधे-सरल कथ्य को प्राथमिकता देते थे। कुछ ऐसी संस्थाएँ थीं जो कि परिमल वालों को बहुत प्रश्रय देती थीं। जैसे, शीतयुद्ध के ज़माने में अमरीका की 'मॉरल रिआर्मामेंट' नाम की संस्था थी, उसका वरदहस्त इनके ऊपर रहता था। प्रगतिशीलों के बारे में लोगों को एक भ्रम था कि इनको रूस प्रश्रय देता है, आर्थिक रूप से भी। जो कृतियाँ साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होती थीं उसको दोनों पक्ष आदर की दृष्टि से देखते थे।

'परिमल' में नए लेखकों को अपनी ओर आकर्षित करने का बड़ा आग्रह रहता था। जब मैंने 'दाज्यू' कहानी पढ़ी और उसकी चर्चा हुई तो 'परिमल' की ओर से मुझे अपनी ओर खींचने की कोशिश हुई। जगदीश गुप्त, जो 'नई कविता' निकालते थे, उसमें लक्ष्मीकान्तजी ने मुझसे कविताएँ लेकर छापीं। धर्मवीर भारती ने अपनी पत्रिका 'निकर्ष' में मेरी कहानी 'नरु का निर्णय' प्रकाशित की लेकिन हमारा दिल्ली से मन कुछ दूसरा बदल गया था, इसलिए 'परिमल' की ओर उतना आकर्षित नहीं हुए। कोशिश ये रहती थी कि चाहे वो प्रगतिशील ख़ेमे का हो, चाहे परिमल ख़ेमे का, अगर कोई रचना अच्छी है तो उसे बिना किसी पूर्वाग्रह के पढ़ा जाए और मैंने एक मीटिंग में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन में ये बात कही थी कि हम बहुत-सी चीज़ों को पढ़ने से वंचित रह गए पूर्वाग्रह के कारण और दूसरे ख़ेमे के लोग भी वंचित रह गए होंगे।

कभी राजेन्द्र यादव ने कहा था कि 'शेखर जोशी की कहानियों का उचित से अधिक मूल्यांकन हुआ है'। आप क्या कहना चाहेंगे?

जिस तरह की कहानियाँ हम लोग लिख रहे थे, उसको 'नई कहानी' का दौर कहा गया और जब चर्चा होती थी तो अमरकान्त, शेखर जोशी और मार्कण्डेय। तो, एक प्रोफ़ेशनल राइवलरी भी इसमें कहीं थी। दूसरा, राजेन्द्र यादव शुरू से बहुत महत्वाकांक्षी लेखक थे। जैसे, शुरुआत में ही वे 'अज्ञेय के नाम खुला पत्र' जैसा लिखते थे, लोगों की नज़र में आने के लिए और अपने लेखन में भी बहुत कुछ पच्चीकारी करते थे। राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर नई कहानी आंदोलन के स्वयंभू नेता बने हुए थे। मोहन राकेश को भी वे अपने साथ लेते थे लेकिन मोहन राकेश उतने मुखर नहीं थे। ये लोग आत्म-प्रचार और अपने को स्थापित करने के लिए बहुत कुछ करने की कोशिश करते थे। हमारे पास कोई साधन भी नहीं थे, इन लोगों के पास प्रचार-साधन थे। वैसे, परस्पर मैत्री हम लोगों की रही और राजेन्द्र यादव जब भी दिल्ली से या आगरा से कलकत्ता जाते थे तो रास्ते में इलाहाबाद में रुकते थे। तब मैं बैचलर था और उनका अड्डा मेरा ही कमरा होता था। उनकी बड़ी मज़ेदार चिट्ठियाँ आती थीं। जब उन्होंने 'हंस' शुरू किया तो मैंने कोई ताज़ी कहानी नहीं लिखी थी, कैथरीन मैंसफ़ील्ड की एक बहुत अच्छी कहानी अनुवाद करके उनको भेजी थी। उन्होंने लिखा, 'हंस' में दूसरी तरह की कहानियाँ देना चाहता हूँ, इसलिए इस कहानी को नहीं छाप रहा हूँ। बाद में ये सोचकर कि कहीं वो ये न सोचें मैं उनसे नाराज़ हो गया हूँ, मैंने 'आशीर्वचन' कहानी, जो मेरी प्रिय कहानी है औद्योगिक जीवन की, उनको भेजी और वो उन्होंने प्रकाशित की और अगले अंक में उस पर एक बहुत सकारात्मक टिप्पणी रमेश उपाध्याय से लिखाई। तो, उससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि बड़े-बड़े लेखक भी एक-दूसरे के बारे में ऐसी बातें कर जाते हैं। *(शेष अगले अंक में)* ❑

Ajkal_October_2022.indd 41 27-09-2022 13:58:23

● लेख



ख़ालिद हुसैन
सौहार्द्र की लौ जलाती कहानियाँ

कमलजीत चौधरी

'रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय
टूटे से फिर न जुड़े, जुड़े गाँठ परि जाय।'

विश्व-इतिहास में भारत-विभाजन एक बड़ी त्रासदी थी। 1947 में भारत का जो खंड अलग हुआ, वह पाकिस्तान कहलाया। भारत-विभाजन ने लाखों लोगों को उनके वतन की मिट्टी से दूर कर दिया। इस समय को धार्मिक कट्टरवादियों की एकांगी मानसिकता ने और अधिक हृदयविदारक बना दिया। धरती के इस सुन्दर भू-खंड पर कुछ ऐसी लकीरें खींच दी गईं, जिन्होंने भूगौलिक रूप से ही नहीं बल्कि मन से भी हमें दूर कर दिया यानी बँटवारे ने घृणा की एक लकीर भी खींच दी। इस लकीर के समानांतर प्रेम की लकीर खींचने वाले भी होते रहे, आज भी हैं और यक़ीनन आगे भी होते रहेंगे। हिन्दी और अन्य भाषाओं में विभाजन पर पर्याप्त लिखा गया है। यशपाल, भीष्म साहनी, अज्ञेय, राही मासूम रज़ा, बलवंत सिंह, मंटो, कृष्ण चन्दर, राजिन्दर सिंह बेदी, कृष्णा सोबती, नानक सिंह, इस्मत चुग़ताई आदि ने इस विषय पर यथार्थवादी कहानियाँ लिखीं। आज भी विस्थापन और सीमावर्ती जीवन पर लिखा जाता है। सभी भाषाओं के लेखकों में दोनों देशों के विभिन्न कोण देखे जा सकते हैं मगर इनके लेखन में एक समानता है कि यह अपने लेखन के मूल में कोई नक्शा विशेष नहीं, असीम मानवता और यथार्थ देखते-दिखाते हैं। यह बात ठीक भी है क्योंकि सच्चा साहित्य मानवता के पक्ष में खड़ा होता है, दृष्टि-सम्पन्नता इसकी ख़ूबी होती है। सच्चा लेखक देश, धर्म, जाति आदि सीमाओं से ऊपर उठकर विश्वबन्धुत्व की भावना से निहित होता है। वह सौहार्द की लौ जलाने का कार्य करता है।

ख़ालिद हुसैन विस्थापन, बँटवारे और आतंक से पीड़ित आम आदमी का चरित्र उकेरने वाले लेखक हैं। इस आलेख के केन्द्र में भारत और पाकिस्तान का सीमावर्ती लोक है, जहाँ प्रेम और मानवता के उदाहरण स्थापित हुए। ख़ालिद जैसे साहित्यकार राजनैतिक अराजकता और परस्पर बढ़ती घृणा के बरअक्स लोकमानस के सच्चे चित्र खींचते हैं। यहाँ टूटते-बनते मानव हैं, पात्र और कुपात्र हैं, महानताएँ और दुर्बलताएँ हैं, घृणा और प्रेम है, विभाजन और विस्थापन है, सीमावर्ती लोग हैं, उर्दू बाज़ार है, अपेक्षा और उपेक्षा है, न्याय और त्याग है, निर्धारित सीमाओं का अतिक्रमण है। इन कहानियों में आशा का एक दीप जल रहा है। सार यह कि आदमी के हाथों से यह दुनिया सुन्दर बनती है यानी लाख बुराई में भी इसी के हाथों में प्रेम व मानवता की ध्वजा फहराती रहती है।

एक देश के टूटने से लाखों-करोड़ों दिल टूटते हैं। दिल टूटना सबसे बड़ी त्रासदी है। इसका टूटना सांस्कृतिक व सामाजिक मूल्यों को प्रभावित करता है। इससे एक ओर प्रेम, आस्था जैसे मानवीय मूल्यों की कहानियाँ बनती हैं तो दूसरी तरफ़ घृणा, अनास्था व कट्टरता का क़िला बनता है। कुछ दीवाने इस क़िले पर मानवता का परचम फहराने का सुन्दर काम करते हैं, इस स्थापना को भारत-विभाजन के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। सन्1947 में लाखों दिल टूटे, राजनैतिक स्वार्थों और धार्मिक कट्टरता के कारण क़ौमी दंगे हुए, मानवता तार-तार होकर रोई। इसके चलते भारतीयता खंडित हुई, हमारी साझी-संस्कृति कुछ धूमिल हुई, बँटवारे की नींव पर साम्प्रदायिकता, अलगाव और असहिष्णुता की दीवारें खड़ी की गईं, देश के भीतर एक देश पैदा किया गया जो अपने पड़ोसी देश से नफ़रत करने लगा। यह बात भारत और पाकिस्तान, दोनों पर लागू होती है लेकिन घृणा की इस राजनीति और कट्टरता के अँधेरे में उजाले के दीये जलाए जाते रहे। ब्रेख़्त लिखते हैं–

'In the dark times
will there also be singing
yes, there will also be singing
about the dark times'.

जी हाँ, अँधेरे में गीत गाए जाते हैं, अँधेरे के गीत गाए जाते हैं, अँधेरे के गीत गाए जाएँगे।

सीमा पर आए दिन पैदा किए जाते तनाव से बात शुरू करते हुए राहत इंदौरी का अग्रलिखित शेर याद आ रहा है। यह सीमावर्ती क्षेत्र के सच को बयान करता है–

'सरहद पर बहुत तनाव है क्या
कुछ पता करो चुनाव है क्या
और ख़ौफ़ बिखरा है दोनों समतों में,
तीसरी समत का दबाव है क्या।'

कितना भी बुरा दौर हो, एक वर्ग हमेशा सच जानता रहा है। सीमावर्ती क्षेत्रों का एक बड़ा वर्ग प्रेमगीतों पर विश्वास करता है। यह वर्ग जानता है कि दोनों तरफ़ जो पेड़ हैं, उनकी जड़ों के एक-दूसरे से अभिन्न रिश्ते हैं। इन्हें काटने की बात करने वाले दोनों देशों के बड़े शत्रु हैं। तोड़ने वाली ऐसी ताक़तों के समकक्ष हमेशा कुछ सामाजिक कार्यकर्ता/ कवि/ लेखक/ कलाकार/ पत्रकार/ शिक्षक और जन-नेता

सम्पर्क : मो. 9419274403, ई-मेल : kamal.j.choudhary@gmail.com

Ajkal_October_2022.indd 42 27-09-2022 13:58:23

चुनौती बने रहते हैं। ऐसे साझे व्यक्तित्व विभिन्न माध्यमों से अवाम की आवाज़ बनते हैं। वे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में अपनी कला, मेधा व एक्टिविज़्म से सार्थक हस्तक्षेप करते हैं, आम जन के सुख-दुःख में शरीक होते हैं। प्रेम, प्रतिरोध और साझी-संस्कृति को बल देते हैं। आज जब असहमति का विवेक ख़त्म होता जा रहा है, विचारधाराओं में वैमनस्य बढ़ता जा रहा है, धर्माधिकारी फ़तवे दे रहे हैं, आयातित राष्ट्रवाद के प्रमाणपत्र दिए जा रहे हैं, ऐसे में ख़ालिद हुसैन की कहानियों का स्वर मानव-एकता और प्रेम का सुर लिए है। वे विचार के नहीं, भाव के लेखक हैं। उनका हर सुर सीधे दिल में उतरने वाला है। उनकी कहानियाँ विश्वास जगाने वाली हैं।

“हिन्दी साहित्य में अज्ञेय की कहानी ‘शरणदाता’, भीष्म साहनी की ‘अमृतसर आ गया है’, उपेन्द्रनाथ अश्क की ‘चारा काटने की मशीन’, असग़र वजाहत का नाटक ‘जित लाहौर नई देख्या ओ जन्म्या नई’, उर्दू में मंटो की ‘टोबा टेक सिंह’ जैसी कृतियाँ विभाजन और सीमा-रेखा के अलग-अलग सच बताती हैं।”

‘दिल की गलियाँ’ नाम की कहानी से बात आगे बढ़ाते हैं। वर्तमान राजनीति और कट्टरता की कर्कशता से परे इसके मुख्य पात्र जुम्मन बाबा की मिठास भी सुनी जानी चाहिए। बाबा जुम्मन विभाजन के समय अपने घर वालों के साथ पाकिस्तान नहीं जाते। तीस साल बाद वह पाकिस्तान में अपने सम्पन्न परिवार में पहुँचते हैं, परिवार के सदस्यों को देखकर बाबा खुश होते हैं। वे भी उनका खूब आदर-सत्कार और सेवा करते हैं, पर कुछ महीनों बाद बाबा फिर भारत वापस लौट आते हैं। लेखक उनसे पूछता है कि वह किसके लिए इतना समृद्ध और प्यार करने वाला घर छोड़कर वापस भारत में आ गए। इसका उत्तर देते हुए जुम्मन बाबा कहते हैं, “ठीक है बेटा ! वहाँ मेरे सारे अपने थे। वह मेरी बड़ी सेवा करते थे, बहुत चाहते थे मुझे। उस मिट्टी में मुझे अपने पुरखों की आत्माएँ दिखाई नहीं दीं। उन घरों में माँ की लोरियाँ नहीं सुनाई दीं। उस मिट्टी में मुझे अपनेपन की सुगन्ध नहीं मिली।” इस मार्मिक सत्य को जम्मू-कश्मीर और पंजाब से अधिक कौन समझ सकता है ! जम्मू-कश्मीर में मीरपुर, छम्ब, कश्मीर, पश्चिमी पाकिस्तान से विस्थापित लोगों की बड़ी संख्या है। विभाजन, युद्धों, सीमा पर होने वाली गोलाबारी, भ्रष्ट सियासत और आतंकवाद परिणामस्वरूप इन लोगों की भावनाएँ कुचली जाती रही हैं। किसी विचारधारा विशेष के खूँटे से बँधे आदमी की बात दूसरी है, एक निरीह विस्थापित के लिए अपनी मिट्टी से बढ़कर कोई स्वार्थ और परमार्थ नहीं होता। विस्थापन ने जम्मू-कश्मीर को चन्द्रकान्ता, महाराज कृष्ण संतोषी, अग्निशेखर, संजना कौल, क्षमा कौल, श्याम बिहारी जैसे लेखक दिए हैं। इन सभी के राजनैतिक विचार जो भी हों, इनमें अपनी मिट्टी के प्रति अगाध प्रेम देखा जा सकता है। अपनी मिट्टी से दूर होने की पीड़ा को इन्होंने अति मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है। ख़ालिद हुसैन भी अपनी मिट्टी से विस्थापित होकर जम्मू में आ गए थे। वे मूलतः ऊधमपुर के रामनगर के रहने वाले हैं। भारत-विभाजन के समय इनका परिवार दंगाइयों द्वारा क़त्ल कर दिया गया था, इस बात ने भी उन्हें नफ़रत करना नहीं सिखाया। उनका लेखन किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं है। वे प्रेम को महत्व देते हैं और मिट्टी से प्यार करते हैं। उनका लेखन किसी भी सिंहासन को ठुकराने की प्रेरणा देते हुए पाठक को अपनी मिट्टी के पास लौटाता है। इस सन्दर्भ का अन्य पक्ष हिन्दी कवि-आलोचक पंकज चतुर्वेदी की निम्न काव्य-पंक्तियाँ रखती हैं–

‘हिन्दी के लेखकों से पूछो/जब आर्य भी बाहर से आए/ तो मुसलमानों को ही तुम/ बाहर से आया हुआ/ क्यों बताते हो...

दरअसल बाहर से आया हुआ/ किसी को बताना/ उसे भीतर का न होने देना है जबकि उनमें से कोई/ महज़ एक दरख़्त की ख़ातिर/ 1947 में यही रह गया/ पाकिस्तान नहीं गया।’

जी हाँ, एक पेड़ की ख़ातिर ! ऐसे पेड़ पाकिस्तान में भी थे जिन्होंने किसी को भारत नहीं आने दिया। यह सवाल दूसरा है कि क्यों ऐसे पेड़ों की क़द्र उत्तरोत्तर भारत में घटती गई और क्यों पाकिस्तान सिर्फ़ मुसलमानों का ही बनकर रह गया। जहाँ तक ख़ालिद हुसैन की बात है उनके यहाँ ऐसे सवाल नहीं हैं, वे किसी सत्ता का गला भी नहीं पकड़ते। आम आदमी को गले लगाते हैं और उनका हाथ पकड़कर सरहद के इधर-उधर छोड़ देते हैं। वे सीमावर्ती रिश्तों में एक गहरी सघनता देखते हैं। बढ़ती साम्प्रदायिकता के बीच आतंकवाद को मानवता का शत्रु क़रार देते हैं। विभाजन और विस्थापन से त्रस्त हृदयों के क़िस्से रचते हैं। राज्य में कश्मीरी विस्थापन की तुलना में अन्य विस्थापनों पर कम लिखा गया है। पिछले कुछ बरसों में प्रकाशित हुए उपन्यासों और कहानियों के अलावा अन्य प्रकार की किताबों के केन्द्र में भी कश्मीर है, जबकि इसी राज्य का दूसरा ख़ित्ता (जम्मू) लेखन में भी उपेक्षा का शिकार रहा है। (हालाँकि यहाँ के कुछेक कवियों और कहानीकारों ने इसकी कुछ भरपाई की कोशिश ज़रूर की है) ख़ालिद हुसैन का लेखन भी यही काम करता है। वे जम्मू प्रान्त के हाशियों को अलग तरह से उकेरते हैं। इनकी लेखनी का केन्द्र जम्मू शहर, अविभाजित देश व राज्य के सीमावर्ती क्षेत्र हैं।

हिन्दी साहित्य में अज्ञेय की कहानी ‘शरणदाता’, भीष्म साहनी की ‘अमृतसर आ गया है’, उपेन्द्रनाथ अश्क की ‘चारा काटने की मशीन’, असग़र वजाहत का नाटक ‘जित लाहौर नई देख्या ओ जन्म्या नई’, उर्दू में मंटो की ‘टोबा टेक सिंह’ जैसी कृतियाँ विभाजन और सीमा-रेखा के अलग-अलग सच बताती हैं। सीमा-रेखा के दंश को जम्मू-कश्मीर ने भी झेला है, आज तक झेल रहा है। इस विषय पर रियासत की हिन्दी कहानी अधिक मुखर नहीं रही, परन्तु किरण बक्शी की ‘स्याह रात’, ओम गोस्वामी की ‘सर्द रात’ और ‘भीगी मिट्टी’ जैसी कुछ ही कहानियाँ ध्यान खींचती हैं, जबकि ख़ालिद हुसैन की काफ़ी कहानियाँ इस दर्द को चित्रित करती हैं।

आलोच्य कहानी-संग्रह में छोटी और मध्यम आकार की 41 कहानियाँ हैं। इस संग्रह को पढ़ने पर एक उपन्यास जैसा आनन्द प्राप्त होता है। इसमें एक ख़ास परिवेश और ख़ास चरित्र को उसी की भाषा में वर्णित किया गया है। ऐसा लगता है जैसे यहाँ स्थूल व सूक्ष्म प्रेम आधारित एक आधिकारिक कथा के अंतर्गत कुछ गौण कथाएँ रची गई हैं। यहाँ अपनी कमज़ोरियों सहित मानवीय सम्बन्धों, विभाजन और विस्थापन की पीड़ा स्पष्ट देखी जा सकती है। कवि अग्निशेखर ने इस संग्रह की भूमिका लिखी है। वे ख़ालिद हुसैन को आस्था और सौहार्द का अनूठा क़िस्सागो बताते हैं। वे लिखते हैं, “अपनी प्रत्येक कथा रचना में कुछ-न-कुछ अनूठा और अद्वितीय रचने वाले ख़ालिद हुसैन ने अपनी चुम्बकीय क़िस्सागोई, सुरमई उजाला बिखेरती भाषा के

Ajkal_October_2022.indd 43 27-09-2022 13:58:23

विन्यास, चरित्रों के चयन और उनके मार्मिक चरित्रांकन और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को बारीकी से बुनने की विधा और शैली के कारण अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है।" लेखन में अपना मुहावरा अर्जित कर लेना बड़ी बात है। ख़ालिद ने अपनी परम्परा को पहचाना है। वे कथ्य और भाषा की जिस बेबाक ज़मीन पर चले हैं, वहाँ चुटीले वाक्यों और मुहावरेदार भाषा में एक ख़ास व्यक्तित्व परिलक्षित है। अगर 'मैन इज़ द स्टाइल' को मानें तो ख़ालिद के जीवनानुभव और उनका भाषाबोध उनकी लेखनी में उतरा है। लोक के ख़ास क़िस्म के चरित्र उनके यहाँ मिल जाएँगे। 'मालिक के आगे सालिक', 'राँझा राज़ी', 'सरदल का अर्दल', 'अर्क़ में ग़र्क़', 'भरी जवानी माँझा ढीला', 'बुक्कल की चैर', 'मिट्टी दे खडोने --घड़ी पल दे परौहने', 'यह जग मीठा अगला किस ने दीठा', 'जात का कोढ़ किरला' और शहतीरी को जफ्फे' आदि में रूमानी, बेबाक और आँचलिक व्यक्तित्व तथा दार्शनिक पुट परिलक्षित होता है। बोल्ड साहित्य नहीं पढ़ने वाले उनकी रूमानियत और बेबाकी पर सवाल भी उठा सकते हैं। पिछले कुछ समय से हिन्दी में प्रसिद्ध बनाम गम्भीर साहित्य को लेकर काफ़ी चर्चा रही। लघु मासिक पत्रिका 'पाखी' में गम्भीर बनाम प्रसिद्ध साहित्य को लेकर खूब बहस छिड़ी रही थी। 'जानकी पुल' वेब पत्रिका के सम्पादक व कथाकार प्रभात रंजन का लिखा याद आ रहा है, जिसमें उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा प्रसिद्ध साहित्य को पाठ्यक्रम में शामिल करने के निर्णय का स्वागत किया था। देखा जाए तो यह पढ़ा-पढ़ाया जाना ही चाहिए। इसका दायरा काफ़ी बड़ा है। 'प्रसिद्ध' का सरलीकरण न किया जाए तो इसे भी लोक-साहित्य की ही श्रेणी में गिना जा सकता है। ख़ालिद हुसैन का साहित्य इसी कोटि में रखा जा सकता है। मेरा विश्वास है कि आलोच्य कहानियों को किसी नुक्कड़, पुली, बस और ट्रक-अड्डे, खोमचे या ढाबों पर गप्पियाते हुए सुना-सुनाया जाए तो इसका ज़ोरदार स्वागत होगा। जिसे गम्भीर साहित्य कहा जाता है वह कम बार ही अधिक लोगों तक पहुँचता और उनका प्रिय हो पाता है। हमेशा गम्भीर होना ज़रूरी नहीं। इसे इस तरह भी लिया जा सकता है कि प्रसिद्ध साहित्य गम्भीर साहित्य के पाठक तैयार करता है।

आलोच्य कहानियाँ एक ख़ास भूमिका निभाती हैं, यह बात सतही नहीं है लेकिन यह कोई गम्भीर विमर्श के लिए भी नहीं लिखी गई हैं। ये अमन-भाईचारे की बातें करती हैं। ज़्यादातर कहानियों की पठनीयता बाँधती है पर कहीं-कहीं उपदेशात्मक-दार्शनिकता से पाठक ऊबता है। 'दर्पण और सत्य' एक ऐसी ही कहानी है। पाठक दार्शनिकता के लिए कहानी नहीं पढ़ता। इसके लिए वह साहित्य नहीं, दर्शनशास्त्र पढ़ेगा। ऐसी कहानियों से बचा जा सकता था, यही बात इनकी प्रतीकात्मक कहानियों पर भी लागू होती है। 'जीवित आँखों की व्यथा', 'घास पर चलना मना है', 'इश्तिहारों वाली हवेली', 'दीवारों में छिपी वासना' 'सलीब में फँसा अस्तित्व', 'गोरी फ़सल के सौदागर' जैसी कहानियाँ प्रतीक आंदोलन से प्रभावित होकर लिखी गई हैं। यह संकेत करती कहानियाँ हैं, यहाँ सम्प्रेष्णीयता भंग होती है। गद्य साहित्य में प्रतीक आंदोलन का अधिक स्वागत नहीं हुआ था, इनकी ऐसी कहानियों को आज के हिन्दी-पाठक किस प्रकार लेंगे, यह कहा नहीं जा सकता। कुछ कहानियों के शीर्षक भारतेन्दु युग के देवकीनन्दन खत्री और गोपालराम गहमरी की कहानियों का भ्रम देते हैं पर अपने कथ्य और प्रवृत्ति को लेकर इन कहानियों का आधार अलग है। अनुवादक ने इस संग्रह में अलग-अलग काल-खंड की कहानियाँ चुनी हैं। इसमें कहानीकार के विकास को स्पष्ट देखा जा सकता है।

आलोच्य कहानियों का मूल स्वर प्रेम और आदर्शवाद है। कुछ कहानियाँ आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं। कहीं-कहीं जादुई यथार्थवाद का आभास होता है पर यह मार्केज़ जैसा जादू नहीं जगा पाता। फ़ैंटेसी के स्पर्श और प्रयोग के स्तर पर 'प्रत्याशा का क़ैदी', 'न्याय-अन्याय' आदि ऐसी कहानियाँ हैं। इन कहानियों को पढ़ते हुए प्रेमचन्द की 'पंच परमेश्वर' और 'नमक का दरोग़ा' जैसी कहानियाँ अलग सन्दर्भ में याद आती हैं, जिनमें न्यायकर्ता का ज़मीर उसे तटस्थ रहकर सही फ़ैसला करने के लिए विवश कर देता है। वहीं बदले हुए युग में 'न्याय-अन्याय' कहानी में न्यायकर्ता अपने ज़मीर का क़त्ल करके ग़लत फ़ैसला सुनाता है। तभी बलात्कृत लड़की की पसली से एक औरत का जन्म होता है जो जज से सम्बोधित होती है।

धर्म ने आम आदमी को छला है। औरत इसका शिकार सबसे अधिक हुई है। 'हलाला' पितृसत्ता और धार्मिक कुरीति पर चोट करती एक मार्मिक कहानी है। इस कहानी में तलाक़ दे दी गई पत्नी से पुनर्विवाह की समस्या चित्रित है। इसकी पात्र राजाँ कहती है–"भेड़ों ने तो ऊन ही उतरवानी है, कोई उतार ले।" इस वाक्य में पीड़ा का पूरा इतिहास है, जिसे सहृदयता व सलीके से पढ़ना चाहिए। हर दौर में प्रेम और स्त्री को सामंतवादी दृष्टिकोण का सामना करना पड़ा है। खाप पंचायतों वाले समाज में जाति और धर्म के नाम पर प्रेम-पात्रों को सूली पर टाँग दिया जाता है जबकि लेखक यहाँ जीवन का सार एवं लक्ष्य केवल और केवल प्रेम को ही मानता है। लेखक अपनी एक कहानी का अंत इन पंक्तियों से करता है, "जीवन का धर्म केवल प्रेम है। मृत्यु का कोई धर्म नहीं। शव का कोई धर्म नहीं।" पर अफ़सोस हमारे समाज में शवों के भी धर्म हैं। इंक़लाबी पंजाबी-कवि लाल सिंह दिल की एक कविता बहुत-कुछ कह जाती है–

'मुझसे प्यार करने वाली
पराई जात कुड़िये
हमारे सगे मुर्दे भी
एक जगह नहीं जलाते।'

इंस्पेक्टर रंधावा और बेबे नूराँ जैसे पात्र स्वप्नदर्शी हैं। वे राजनैतिक और संवैधानिक सीमाएँ तोड़कर मानवता की लकीर खींचते हैं। इंस्पेक्टर रंधावा, पतंग लूटने के मोह में सीमा पार कर गए पड़ोसी देश के बच्चों को वापस भेज देता है। वह भावना पहचानता है। बच्चा कहता है, "खुदा की क़सम ! हम यहाँ पतंग लूटने ही आए थे। बात यूँ हुई कि हम दोनों छत पर पतंग उड़ा रहे थे। एक कटी हुई पतंग को देखते ही मैंने अपनी पतंग की डोर छोटे भाई शरीफ़ को दी और खुद पतंग लूटने दौड़ पड़ा। मेरे पीछे पीछे तुफ़ैल भी दौड़ा और हम दोनों 'बो काटो' कहते-कहते आपके गाँव तक पहुँच गए। दूर ही कितना है, बस गन्ने के दो-चार खेत ही तो फ़लाँगने पड़ते हैं।" अब बताएँ, कि इस पर क्या कहा जाए---मिट्टी, हवा, पानी, बोली-वाणी जब एक है तो बच्चे ग़लती खा जाएँ तो क्या सूली लटका दिया जाए लेकिन अफ़सोस कि हर जगह इंस्पेक्टर रंधावा भी नहीं होते। एक लकीर किस तरह बुज़ुर्ग सजावल चौधरी और माई साबरी को मिलने से रोक लेती है, यह त्रासदी 'लकीर' नामक कहानी में बख़ूबी दर्शाई गई है। 'लाहौर' शीर्षक से पंजाबी में एक गीत है, जिसे रणजीत बावा ने गाया है, यह गीत विभाजन

Ajkal_October_2022.indd 44 27-09-2022 13:58:23

और दंगे से शुरू होकर मानवता की चरम-सीमा पर ख़त्म होता है। इसमें एक सिख बुज़ुर्ग लाहौर से आने वाली सपनों की रेल का इंतज़ार करता है। गीत का यह नायक 1947 में लाहौर में दंगाइयों द्वारा अपने परिवार का क़त्ल किए जाने के प्रतिक्रियास्वरूप दंगाई बन जाता है मगर जब वह एक अनाथ मुस्लिम बच्चे को अपनी माँ के शव के पास बैठ रोते हुए देखता है तो उसका हृदय परिवर्तित हो जाता है। वह उस अनाथ बच्चे को अपना बेटा बना लेता है। चार मिनट का यह गीत अपने बोल, फ़िल्मांकन व उम्दा आवाज़ से किसी बड़ी किताब जैसा असर छोड़ जाता है। एक और कहानी है 'शत्रु कौन', इसमें विभाजन पूर्व एक ही गाँव में रहने वाले दो सैनिक, दो सीमाओं के प्रहरी हैं। तो क्या यह एक-दूसरे के शत्रु हैं ? वे सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं, एक-दूसरे को बुलाते, मज़ाक करते और मिठाई भेजते हैं। रावी और चेनाब के पानी का एक सच यह भी है।

आज आतंकवाद जैसी वैश्विक समस्या उभर रही है। जम्मू व कश्मीर पिछले तीन दशकों से इससे जूझ रहा है। इसे लेकर हर भाषा में लेखन हुआ है। कश्मीरी-पण्डित हिन्दी लेखक-लेखिकाओं ने भुक्तभोगी के रूप में इसे लिखा है। संजना कौल का 'पाषाण युग' (1999) और क्षमा कौल का 'दर्दपुर' (2004) इस समस्या पर लिखे गए दो अलग तरह के उपन्यास हैं। ख़ालिद हुसैन की 'मनुष्य के भीतर का मानुष', 'कुआँ और खाई', 'मृत व्यक्ति की कथा' जैसी कुछ कहानियों में भी आतंकवाद के घिनौने साए को दर्शाया गया है। इस समस्या के सामने राज्य के लोग बेबस हैं। ऐसे में यहाँ ऐसे साहित्य और कला का स्वागत किया जाना चाहिए जो एकता, परस्परता और प्रेम का रास्ता बताए, 'जो आतंकवाद और अन्य अंध स्वार्थी सत्ताओं पर चोट करे। ख़ालिद के पास ऐसी कहानियाँ हैं, जिनमें आदर्श और यथार्थ दोनों हैं। धार्मिक कट्टरता और फ़ासिस्ट व साम्राज्यवादी सत्ताओं के कारण फलते-फूलते आतंक के सामने इनका लेखन एक चुनौती की तरह देखा जा सकता है।

ख़ालिद हुसैन के महिला-चरित्र विभिन्न पक्ष और स्वभाव लेकर आते हैं। कहीं प्रेम को ठुकरा देने वाली फ़िरोज़ा है तो कहीं काम से अध्यात्म की यात्रा कर चुकी शादाँ बिल्ली। कहीं वह रूढ़ धर्म व मान्यताओं तले पिसती है तो कहीं वह लड़ती है, प्रतिकार लेती है। 'घृतकुमारी' की गुल्लाँ और 'भूख को भोजन क्या' की लाजो का चरित्र हद दर्जे का खुला चरित्र है। ये अपवाद की कहानियाँ हैं, किसी बड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं।

'इश्क मलंगी' देह और प्रतिकार से परे समर्पण व सच्चे प्रेम की कहानी है। काले ख़ान का प्रेम रीतिमुक्त कवि घनानन्द जैसा पाक-साफ़ है। सुजान नामक वेश्या ने घनानन्द के प्यार को ठुकरा दिया था। काले के प्रेम प्रस्ताव को फ़िरोज़ा नामक वेश्या ठोकर मार देती है। उसकी दुनिया लुट जाती है। तांगा चलाना छोड़ गामी नाई की दुकान पर बैठा चौबारे की ओर देखता रहता है। दौलत को सब कुछ समझने वाली फ़िरोज़ा उसकी भावना को नहीं समझती। इस बीच देश टूटता है। उर्दू बाज़ार लुट जाता है। कहानी का नायक फ़िरोज़ा के लिए पाकिस्तान पहुँच जाता है। लेखक बरसों बाद पड़ोसी देश जाता है तो काले ख़ान को ढूँढता है। वह मिल भी जाता है। लेखक फ़िरोज़ा के विषय में पूछता है तो वह बताता है कि बहुत प्रयासों से भी वह नहीं मिली। काले ख़ान बूढ़ा हो गया था। उसके इश्क की लौ वैसे ही जल रही थी। वह मज़ार की सेवा करता है। जब मन दुखी होता है तो वह पत्थर तोड़ता है। उसका यह सम्वाद कितना कुछ कह जाता है, "बाबू ! यह पत्थर तो मैं तोड़ लेता हूँ पर फ़िरोज़ा के दिल का पत्थर मुझसे टूट नहीं सका और इस बात का दु:ख मरते दम तक मेरे भीतर जीवित रहेगा।" जीवन की सार्थकता, मर्म और वास्तविकता प्रेम में ही है। आलोच्य कहानी अपने परिवेश को लेकर भी एक सघन कहानी है।

जम्मू के राजेन्द्र बाज़ार को विभाजन पूर्व 'उर्दू बाज़ार' कहा जाता था। उस समय यहाँ शबाब, हुस्न और कला को पनाह मिलती थी। इस कहानी में कोठों, चौबारों, हवेलियों और प्रसिद्ध गायिका मलका पुखराज के जीवन से जुड़ी कुछ रोचक जानकारियाँ मिलती हैं। देशकाल वातावरण की दृष्टि से लेखक इन कहानियों में और सचेत हो सकता था। इतिहास से अधिक प्रामाणिक साहित्य हो सकता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी अपने एक निबन्ध में लिखते हैं कि किसी समाज को जानने का सबसे प्रामाणिक स्रोत साहित्य है। एकदम सही है लेकिन बशर्ते वह साहित्य ही हो। 'सतीसर का सूर्य' में कश्मीर का इतिहास देखा जा सकता है। यह कहानी तथाकथित धर्म से परे अध्यात्म की शरण में जाने की बात करती है। ऐसी कहानियाँ, कहानी के पारम्परिक लक्षणों पर खरी उतरने के लिए नहीं लिखी गई हैं। 'बैडे की लंका' में विरासत, विभाजन और पुनर्वास की आशा-निराशा को वाणी दी गई है, तो 'बाबा टिक्की' एक अलग तरह की मार्मिक कहानी है। इसमें हमारे अँचल का कोई चिर-परिचित चरित्र है जो हमारी लोक-संस्कृति का एक हिस्सा है। हमारे इर्द-गिर्द ऐसी अनेक कहानियाँ हैं। बेरोज़गार मुहकम दीन को बड़े भाई की दुकान पर बैठने पर सम्मान के बजाय भाई की दुत्कार मिलती है। वह घर से भागकर अमृतसर चला जाता है। वहाँ जमीला नाम की लड़की से निकाह कर लेता है। शारीरिक अक्षमता के कारण शादी के बाद गृहस्थ जीवन का सुख प्राप्त नहीं हो पाता। उसे उसकी पत्नी छोड़ देती है। वापस आकर अंतत: वह फिर मरे हुए भाई की दुकान चलाता है। यहीं पर उसे 'बाबा टिक्की' की उपाधि मिलती है। शुरू में उसे बुरा लगता है। वह यह नाम सुनकर चिढ़ता है। बाद में उसे इसी नाम में एक अपनत्व महसूस होता है। बच्चे जब उसे 'तिक्की बाबा तिक्की बाबा' कहकर बुलाते तो वह बच्चों से बहुत प्यार करता। अंत में बाबा टिक्की का कैन्सर से मर जाना पाठक को द्रवित करता है। बाबा टिक्की समेत ख़ालिद के कुछ पात्र याद रह जाने वाले हैं। गामी नाई, काले ख़ान, जुम्मन बाबा आदि ऐसे ही पात्र हैं। आमजन से सम्वाद रखने वाले इनसे मिल व बतिया सकते हैं। वास्तविक जीवन और समाज का प्रतिनिधित्व ऐसे ही पात्र करते हैं, और हर देशकाल व परिवेश को समृद्ध करते हैं।

सच्चा साहित्य किसी भी लकीर को नहीं मानता, यह पूरे विश्व को एक परिवार मानने की भावना पर बल देता है। जनता का इतिहास इसी प्रकार के साहित्य में निहित है। ख़ालिद हुसैन की कहानियों को भी इसी सन्दर्भ में देखना चाहिए। इनका हिन्दी-संसार में भी स्वागत किया जाना चाहिए। आख़िर ये कहानियाँ विपरीतों में व्याप्त अँधेरों के सामने सौहार्द की लौ जलाती कहती हैं–

'पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ पण्डित भया न कोय
ढाई आखर प्रेम के पढ़े सो पण्डित होय।' ❑

Ajkal_October_2022.indd 45 27-09-2022 13:58:24

● श्रद्धांजलि



करोगे याद तो हर बात याद आएगी...

संजीव श्रीवास्तव

ग़ज़ल और पार्श्व गायक भूपेंद्र सिंह यानी ग़मगीन रूमानियत की रूहानी आवाज़ के मालिक। उनकी आवाज़ में भारीपन के साथ मिठास का अनोखा संगम था। शास्त्रीयता की कसौटी पर परखी जाने वाली आवाज़, जिसमें लोकप्रियता की बजाय अर्थवत्ता की गुंजाइश अधिक थी। यही वजह है कि गायक भूपेंद्र के नहीं रहने पर उनकी आवाज़ में सुरों की अर्थवत्ता को शिद्दत से याद किया गया है।

भूपेंद्र को जब पर्दे पर गाने का पहला मौक़ा मिला... वह साल था सन् उन्नीस सौ चौंसठ। फ़िल्म थी 'हक़ीक़त'। चेतन आनन्द द्वारा निर्देशित वह फ़िल्म हिन्दी की पहली वॉर फ़िल्म के तौर पर विख्यात है और भविष्य की तमाम युद्ध विषयक फ़िल्मों की प्रेरणा भी। इस फ़िल्म का एक गीत है, जिसे आज भी गुनगुनाया जाता है– 'हो के मजबूर मुझे उसने बुलाया होगा....।' इसी गाने में भूपेंद्र सिंह ने पहली बार अपनी आवाज़ दी थी। साथ में अन्य बड़े गायक थे– मोहम्मद रफ़ी, तलत महमूद और मन्ना डे। गायिकी की दुनिया में साठ के दशक में मोहम्मद रफ़ी, तलत महमूद और मन्ना डे जैसे गायक दिग्गज कलाकार थे ! जो गायक सन् चौंसठ में पहली बार गाता है, वह सालोंसाल तक सिने संगीत की मुख्यधारा से विलुप्त-सा क्यों हो जाता है ?



भूपेंद्र के गीत-ग़ज़ल को जब भी हम सुनते हैं, ऐसा लगता है कोई स्थिरचित्त व्यक्ति ध्यान लगा रहा है और उसे जल्दी-जल्दी कहीं जाने की हड़बड़ी नहीं है। कोई हैरत नहीं कि जब हम उनकी गायिकी के करियर को भी देखते हैं तो हमें यही स्थितप्रज्ञता साफ़-साफ़ नज़र आती है। साठ और सत्तर के दशक में मुकेश, रफ़ी और फिर किशोर कुमार जैसे पुरुष गायकों का अपना बोल-बाला था। वहीं शास्त्रीय पार्श्व गायकों की बात करें तो मन्ना डे उसकी भरपाई कर ही रहे थे तो ऐसे में भूपेंद्र की आवाज़ की दरकार ही क्या थी ! शायद भूपेंद्र को शुरुआती दिनों में इस नज़रिए का सामना ज़रूर करना पड़ा रहा होगा ! या तो वो ख़ुद जल्दी में नहीं थे या फिर उनको लेकर कोई जल्दबाज़ी नहीं करना चाहते थे। वास्तव में उनकी आवाज़ में वो गम्भीरता और स्थिरता थी जो गुलज़ार जैसे संजीदा गीतकारों के शब्दों की ख़ास दरकार थी। यही वजह है कि गुलज़ार के शब्द और भूपेंद्र की आवाज़ आगे चलकर दोनों एक-दूसरे के लिए पूरक-से बन गए।

गायक भूपेंद्र सिंह का जन्म 8 फरवरी सन् 1940 को पंजाब के अमृतसर में हुआ। संगीत की शिक्षा-दीक्षा घर में ही हुई क्योंकि पिता संगीत के उस्ताद थे लेकिन पिता इतने सख़्त मिज़ाज थे कि उनमें संगीत सीखने की इच्छा ही ख़त्म हो गई। कहते हैं न कि विरासत कभी साथ नहीं छोड़ती। संगीत से भागकर भी वो गीत-संगीत की दुनिया में ही रहे लेकिन अपनी अलग पहचान बनाकर। ग़ज़ल गाने का शौक चढ़ा और इसी शौक के चलते ऑल इंडिया रेडियो में गाने का प्रोग्राम करने का मौक़ा मिलने लगा। यहीं से मुम्बई की राह आसान बनी। सन् 1962 में एक कार्यक्रम के दौरान मदन मोहन जैसे ख्यातनाम संगीतकार ने भूपेंद्र की आवाज़ सुनी। उसमें उन्हें कुछ तल्ख़ी महसूस हुई और उन्होंने अपनी अगली फ़िल्म 'हक़ीक़त' में गाने का मौक़ा दिया। गाना मशहूर हुआ लेकिन इस फ़िल्म के बाद गीत-संगीत के बाज़ार में रफ़ी, मुकेश, मन्ना डे, किशोर कुमार जैसे लोकप्रिय गायकों के बीच अपनी छाप की पहचान देना बहुत आसान नहीं था। उनकी आवाज़ की कशिश को जिस प्रकार संगीतकार मदन मोहन ने पहचाना, वैसी ही किसी और शख़्सियत की दरकार थी क्योंकि तब भी बाज़ार में जो माँग थी, उसकी भरपाई भूपेंद्र की गायिकी नहीं कर पा रही थी। गोया भूपेंद्र मुख्यधारा के सिनेमा के नायकों को पार्श्व स्वर नहीं दे सके याकि फ़िल्मकारों ने उनकी आवाज़ को उस धारा के लायक नहीं समझा। भूपेंद्र को 'हक़ीक़त' के बाद जो दूसरी फ़िल्म मिली, वह भी चेतन आनन्द ने ही बनाई थी और उसमें संगीत दिया था नौशाद ने। साल 1966 की वह फ़िल्म राजेश खन्ना की पहली फ़िल्म है 'आख़िरी ख़त'। इसमें भूपेंद्र ने गाया-'रुत जवाँ जवाँ रात मेहरबाँ...' लेकिन ना तो इस फ़िल्म से राजेश खन्ना को कोई पहचान मिली और ना ही इस गीत से भूपेंद्र के करियर को कोई लाभ मिला।

'हक़ीक़त' और 'आख़िरी ख़त' के बाद आबोदाना और आशियाना के लिए भूपेंद्र का संघर्ष जारी रहा। मुम्बई की भूल–भुलैय्या गलियों में भटकते हुए अपने गानों के लफ़्ज़ों की मानी को जैसे अपनी ही ज़िन्दगी में ढालते रहे मसलन 'दिन ख़ाली ख़ाली बरतन है और रात है जैसे अंधा कुआँ'। ऐसे कई गीतों में भूपेंद्र की आवाज़ का मानो खुद

सम्पर्क : मो. 9313677771, ई-मेल : sanjeevsdelhi@gmail.com

Ajkal_October_2022.indd 46 27-09-2022 13:58:24

का सत्य खदबदाने लगता है। वो साधारण बजट की कुछेक फ़िल्मों में गाते रहे और फिर किसी मदन मोहन जैसे जौहरी की तलाश में रहे जो उनकी आवाज़ के मुताल्लिक़ सुर और अल्फ़ाज़ भी दे। कुछ सालों बाद यह मौक़ा मिला फ़िल्म 'परिचय' (1972) से। इस फ़िल्म में नायक थे जितेंद्र। डायरेक्टर और राइटर थे गुलज़ार। इस फ़िल्म में गाकर मानो उन्हें एक बार फिर से गुलज़ार के रूप में दूसरे मदन मोहन मिल गए। फ़िल्म में भूपेंद्र ने दो गीत गाए। एक 'मितवा बोले मीठे बोल....' और दूसरा 'बीती ना बिताई रैना...।' संगीतकार आर.डी. बर्मन के निर्देशन में लता मंगेश्कर जैसी गायिका के साथ गाने का मौक़ा मिला। यह एक ऐतिहासिक संयोग था। गुलज़ार के शब्दों की अभिव्यक्ति के लिए भूपेंद्र की आवाज़ अत्यंत माक़ूल साबित हुई। यहीं से भूपेंद्र के करियर का 'मौसम' बदला और मंझधार की ज़िन्दगी को जैसे 'किनारा' मिला। आगे चलकर गुलज़ार के बोल और भूपेंद्र के सुर ने सिनेमा की दुनिया को ऐसे कई यादगार गीत दिए जिन्हें कभी भूला नहीं जा सकता।

भूपेंद्र के गाए गीतों की बात करें तो उनमें एक अलहदा रोमांटिसिज़्म है। संघर्ष और नॉस्टेल्जिया का रोमांटिसिज़्म। अपने गीतों में वो ऐसे 'घरौंदा' के वासी हैं जिसका कोई दरवाज़ा नहीं है, फिर भी वो मस्तमौला हैं। वो मुफ़लिसी में ग़मगीन होते हैं तो भी अंदाज़ बेफ़िक्री लिए हुए होता है। बावजूद इसके वो वक़्त से मुठभेड़ भी नहीं करते। बस गाकर रह जाते हैं। सुनने वालों को यह अल्फ़ाज़ और उस पर ये नमूदार अंदाज़ दिलों तक उतरता है। कुछ नमूने भी पेश हैं। मसलन, 'करोगे याद तो हर बात याद आएगी...', 'दिल ढूँढता है फिर वही फ़ुरसत के रात-दिन'... 'एक अकेला इस शहर में...', 'नाम गुम जाएगा', 'कभी किसी को मुकम्मल जहाँ नहीं मिलता' या फिर 'ज़िन्दगी मेरे घर आना...'। भूपेंद्र वास्तव में नायक के अकेलेपन और उसकी उदासी को प्रांजल अभिव्यक्ति देने वाले गायक थे लेकिन रोमांटिकता भी कम नहीं थी। 'हुज़ूर इस क़दर भी न इतरा के चलिए'...या फिर 'किसी नज़र को तेरा इंतज़ार आज भी है...' ऐसे गीत-ग़ज़ल में भूपेंद्र आम ज़िन्दगी के रूमानियत भरे फ़लसफ़े को आवाज़ देते हैं।

ग़ौरतलब है कि गुलज़ार के शब्द और भूपेंद्र के स्वर का युगल तब बना था जब दोनों के ख़्वाब में आसमानी रंग भर रहे होते हैं। यह सन् 1975 के आस-पास की दुनिया थी। गुलज़ार इससे पहले सन् 1971 में 'मेरे अपने' जैसी फ़िल्म लिख चुके थे जिसमें बेरोज़गारी को प्रमुख स्वर बनाया गया था। वहाँ ऐसे युवा टोलियों की दुनिया थी जहाँ संघर्ष और नॉस्टेल्जिक रोमांटिसिज़्म के सिवा और कुछ भी न था। इनकी ऊबड़-खाबड़ दुनिया को अपने रोमांटिक शब्दों में पिरोने में गुलज़ार का कोई सानी नहीं है। सन् 1974-75 के आस-पास इन दोनों की जोड़ी के जितने भी गीत हैं, उनमें आम ज़िन्दगी की ना केवल सचाई है बल्कि ख़वाबों, ख़यालों की दुनिया भी बसती है। यह अपने-आप में विरल हैं कि जहाँ ज़िन्दगी का सच हो, वहाँ ख़्वाब भी बुने जा रहे हों। कोई हैरत नहीं कि इन्हीं खूबियों के चलते इनके गीत सालों बाद भी यादगार बने हुए हैं। भूपेंद्र को मदन मोहन, नौशाद और आर. डी. बर्मन जैसे संगीतकारों के अलावा लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल और यहाँ तक कि बप्पी लाहिड़ी जैसे संगीतकार के साथ भी काम करने का मौक़ा मिला। यानी वो वक़्त के साथ क़दमताल करते रहे।

गायिकी के अलावा गिटारिस्ट भूपेंद्र सिंह को भी भूलना नामुमकिन है। 'हक़ीक़त' और 'आख़िरी ख़त' फ़िल्मों के दौरान ही उन्होंने गिटार की बारीकियों को सीखना शुरू कर दिया था। उन्हें गिटार बजाने की महारत हासिल थी। वह हुनर एकदम मॉडर्न था। उन्होंने कई फ़िल्मों में गिटार बजाए हैं। मसलन 'दम मारो दम...' ('हरे रामा हरे कृष्णा'), 'चुरा लिया है तुमने जो दिल को...' ('यादों की बारात'), 'चिंगारी कोई भड़के...' ('अमर प्रेम'), 'महबूबा महबूबा...' ('शोले') वग़ैरह। ये सभी गाने बेहद लोकप्रिय हैं। हम कह सकते हैं कि जो काम वो अपने स्वर में नहीं करते थे वो काम अपने गिटार से पूरा करते थे। भूपेंद्र का विवाह बांग्लादेश की लोकप्रिय गायिका मिताली मुखर्जी से हुआ। उन दोनों ने मिलकर कई चर्चित एलबम भी दिए हैं जो कि यादगार हैं लेकिन निधन से पहले लम्बे समय से उन्होंने गायन को अलविदा कह दिया था। संयोग कि 'मेरी आवाज़ ही पहचान है...' गीत को लता मंगेशकर और भूपेंद्र ने साथ-साथ गाया था और लता मंगेशकर के निधन (6 फरवरी, 2022) के कुछ ही महीने बाद भूपेंद्र भी 18 जुलाई, 2022 को इस दुनिया से रुख़्सत हो गए। वाक़ई दोनों की आवाज़ की अपनी-अपनी पहचान थी। ❑

फ़ोर्ड वाले मामा...

पृष्ठ 28 से आगे...

पैसा था मेरी बीमारी में लग गया। इन लड़कों (बेटों) ने मेरे इलाज के लिए एक खेत गहन रख दिया है। खेत वापस मिले, न मिले.....

मैं पहली बार उन्हें कार और वकालत से अलग खेत की बात करते देख रहा था। पश्चाताप करते देख रहा था। खुद पर लज्जा आई। मामा को क़रीबी मानता रहा लेकिन वकालत की व्यस्तता में उनके साथ मुम्बई जाने का विचार तक नहीं किया।

बीमारी असाध्य थी या चिकित्सकों ने परख लिया था पैसा नहीं है इसलिए इन्हें वापस घर भेज दिया। पता नहीं कैसा उपचार हुआ, कैसी शल्य-क्रिया। एक लाख देकर मैंने कर्त्तव्य की पूर्ति मान ली जबकि मुम्बई में पता नहीं कितना ख़र्च हुआ होगा। मेरे पास आज की तारीख़ में इतना पैसा है कि उनके उपचार का ख़र्च उठा लेता।

"मामा, अपना ध्यान रखो। खेत वापस मिल जाएगा। मैं मदद करूँगा।"

"तुम पर बहुत बोझ डाला .....आते रहना। लगता है कोई है जो मुझे समझता है।"

मैं श्रीपुर लौट आया।

अगले सप्ताह उनके बड़े बेटे ने मोबाइल पर सूचित किया, "सुबह पाँच बजे मामा (उनके बच्चे उन्हें 'मामा' कहते थे) नहीं रहे।"

मैं माँ के साथ गया।

चैगान में कुम्हड़े की बेलों में छिपी फ़ोर्ड खड़ी है।

आँगन की गोबर लीपी भूमि में सफ़ेद चादर ओढ़कर मामा पड़े हैं। मुझे बार-बार लग रहा है चादर के भीतर उनके दोनों हाथ छाती पर इस तरह रखे हैं जैसे स्टेयरिंग घुमाने की प्रक्रिया में हैं। ❑

Ajkal_October_2022.indd 47 27-09-2022 13:58:24

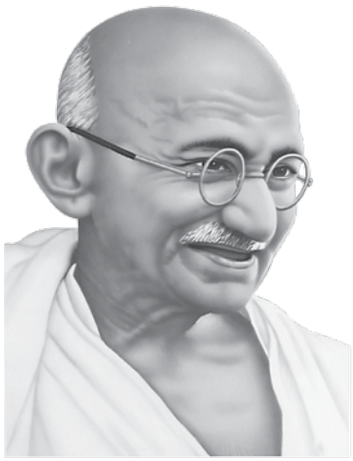
सन्त गाँधी

आचार्य जे. बी. कृपलानी

__आजकल__ पत्रिका में 75 वर्ष पूर्व प्रकाशित अंकों से प्रत्येक माह के विशिष्ट लेख का स्मृति स्तम्भ आरम्भ हुआ है। प्रस्तुत है इस कड़ी का अगला लेख जो संयुक्तांक सितम्बर–अक्तूबर 1947 में प्रकाशित हुआ था.....

गाँधीजी संसार में स्वतन्त्र, पूर्ण एवं क्रियाशील जीवन में विश्वास करते हैं। वे केवल निष्क्रिय भक्ति और कोरे ज्ञान को नहीं मानते। संसार में रहने तथा कार्य करने में उनका विश्वास है। वे कर्त्तव्य की साधुतापूर्वक पूर्ति में ही मुक्ति एवं आत्मज्ञान की प्राप्ति चाहते हैं। वे यह नहीं चाहते कि मनुष्य संसार के ऊहापोह से घबराकर जंगलों में चला जाए। उनके मत में तो सांसारिक कर्त्तव्यों के भार को निष्कपटता, वीरता एवं प्रसन्नता से वहन करना चाहिए। वे जगत्-त्याग तथा संन्यास में उनके तथाकथित प्रचलित अर्थों में विश्वास नहीं करते। उनके मतानुसार, जैसाकि गीता में उपदिष्ट है, संन्यास मन का होना चाहिए, दिखावे का नहीं। निष्काम भाव से अपना कर्त्तव्य पालन करने वाला, सफलता और असफलता में समान धीर रहने वाला मनुष्य ही सच्चा संन्यासी है।

गाँधीजी का विश्वास है कि रूढ़िगत अर्थों में संन्यासी समझे जाने वाले मनुष्य को भी संसार का भार वहन करना चाहिए। उसे घर-बार छोड़ कर जंगल में नहीं चले जाना चाहिए और न ही केवल ध्यान का जीवन व्यतीत करना चाहिए। उसे गृहस्थ के साथ एक अच्छे और न्यायपरायण नागरिक के समान कर्त्तव्य-पालन करना चाहिए। संन्यासी को किसी उपयोगी धन्धे में लगा रहना चाहिए। किसी और कारण से न सही, बल्कि इसलिए कि जिस समाज से वह इतनी सुविधाएँ पाता है, उसका बदला कुछ तो चुकाए। वह समाज से अपना भौतिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक अवलम्ब पाता है। भौतिक शरीर के साथ ही सामाजिक और आध्यात्मिक शरीर का विकास होता है। आध्यात्मिक उन्नति के लिए जिस प्रकार भौतिक शरीर के स्वस्थ होने की आवश्यकता है, उसी उद्देश्य के लिए उसे समाज और राजनैतिक संस्थाओं को बल देना चाहिए।



गाँधीजी की सम्मति में भौतिक संन्यास भयानक है। इससे बहुधा चाटुकारिता का जीवन व्यतीत करने की बान पड़ जाती है। किसी व्यक्ति को अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के लिए समाज पर बोझ बनने का अधिकार नहीं है। एक संस्था के रूप में संन्यास बहुधा व्यभिचार और पतन की ओर ले जाता है। इसलिए गाँधीजी मनुष्य को कर्म करते रहने का आग्रह करते हैं।

अब यह प्रश्न उठता है कि यदि गाँधीजी संन्यास और तप में विश्वास नहीं करते, तो वे इतना कठोर जीवन क्यों व्यतीत करते हैं? यदि वे मध्यवर्ती मार्ग एवं संयोगात्मक तथा सम्पूर्ण जीवन का पक्ष समर्थन करते हैं जो कि आकाश और पाताल दोनों को छूता है, तो उन्होंने इतना बड़ा त्याग क्यों किया है ? ऐसे प्रश्न बहुधा पूछे जाते हैं परन्तु यह सब भ्रान्त धारणा पर अवलम्बित हैं। ऐसे प्रश्न वही लोग करते हैं जिन्होंने गाँधीजी को निकट से नहीं देखा है अथवा उनके जीवन का परीक्षण एवं विश्लेषण नहीं किया है बल्कि दूर ही से उन्हें देखा अथवा उनकी घर की बनी हुई चादर की कहानी सुनी है, अथवा वे यह जानते हैं कि गाँधीजी क़मीज़ नहीं पहनते। उन्होंने यह भी सुन रखा है कि वे सादा खाना खाते हैं जिसमें मसाले अथवा चटनी का प्रयोग नहीं किया जाता। और यह भी सुना है कि गाँधीजी ने अपनी सारी सम्पत्ति त्याग दी है और मिट्टी की बनी झोपड़ी में आश्रम बना कर रहते हैं परन्तु इन सब बातों से यह प्रमाणित नहीं होता कि वे एक सन्त या वैरागी का जीवन बिताते हैं। जो हो, उनका जीवन साधारण सन्त का जीवन नहीं है।

गाँधीजी किसी प्रकार की कठिन तपस्या नहीं करते। वे प्राचीन साधुओं के समान अपनी देह को कष्ट नहीं देते परन्तु वे सादा जीवन व्यतीत करते हैं— आत्म-संयम और आत्म-नियंत्रण का जीवन। उनकी इच्छाएँ सीमित हैं। उसकी प्रसन्नता स्वाभाविक और निस्पृह है परन्तु यह बात भी नहीं भूलनी चाहिए कि सरलता भी एक मध्यवर्ती मार्ग है। यह इन्द्रियलिप्सा और उनके निरोध की चरमसीमा के बीच का रास्ता है। सरलता इच्छाओं के विनिमय का दूसरा नाम है परन्तु ऐसे युग में जबकि आनन्द और आवेग को ही जीवन का सर्वस्व मान दिया गया है, यदि गाँधीजी की सादगी को साधुता के नाम से पुकारने लगे, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। जिस युग में पैसा ही सब कुछ है, उसमें तो गाँधीजी के सम्पत्ति त्याग और भले कार्य में तत्परता को उनका महान् त्याग माना जाएगा। जिस युग में इच्छाओं के कृत्रिम उत्तेजन एवं वृद्धि को ही सभ्यता और संस्कृति का चिह्न माना जाता है, स्वस्थ जीवन के लिए गाँधीजी की अनिवार्य सीमित भौतिक आवश्यकताओं को इन्द्रिय-निग्रह ही माना जाएगा परन्तु किसी स्वस्थ साधारण समाज में जहाँ मानद व्यक्तित्व के पूर्ण और एक स्वर विकास को महत्व दिया जाता है, गाँधीजी के जीवन को देह को कष्ट देने वाला जीवन माना जाएगा।

गाँधीजी का विश्वास है कि शरीर को पूर्णतया स्वस्थ रखना मनुष्य का कर्त्तव्य है। कर्मयोगी का विश्वास और क्या होगा ? शरीर को

Ajkal_October_2022.indd 48 27-09-2022 13:58:25

स्वस्थ रखना तथा रोगों से मुक्त रहना एक स्वर्ण-सिद्धान्त है। गाँधीजी मानते हैं कि स्वास्थ्य नियमों के अनुकूल संयत और नियमित भोजन, स्वस्थ वातावरण और क्रियाशील जीवन, स्वस्थ और प्रसन्न जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए वे औषधियों और उत्तेजक द्रव्यों के विरुद्ध हैं। इस विचार से वे औसत डॉक्टर से अधिक आधुनिक और वैज्ञानिक हैं। गाँधीजी का भोजन यद्यपि सादा होता है परन्तु स्वास्थ्यदायक एवं पौष्टिक होता है। गुण और परिणाम के विचार से भी पर्याप्त होता है। भोजन में अत्युत्तम प्रकार की वस्तुएँ प्रयुक्त की जाती हैं। उनके आश्रम में मिलावटी खाद्य को कहीं स्थान नहीं। अब तो आयु के साथ उनके भोजन का परिमाण घट गया है, परन्तु वे युवावस्था में कम नहीं खाते थे। वे मसाला या चटनी आदि का प्रयोग नहीं करते परन्तु क्या स्वस्थ एवं वैज्ञानिक भोजन के ये आवश्यक तत्त्व हैं ?

गाँधीजी अपने तथा अपने निर्धन देशवासियों के लिए भोजन पर प्रयोग करते रहे हैं। एक संतुलित भोजन कैसा होता है ? निर्धन ग्रामीण के लिए इसे सस्ता कैसे बनाया जा सकता है ? इसे किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है ? क्या मशीन में साफ़ किए हुए चावलों की अपेक्षा हाथ से कुटे हुए चावलों में पोषण-तत्त्व अधिक रहते हैं। स्वास्थ्य-सम्बन्धी सब प्रश्नों पर गाँधीजी ने गम्भीरतापूर्वक विचार किया है– व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय दृष्टिकोण दोनों में वे जब तक स्वयं किसी चीज़ को बरत कर नहीं देख लेते, तब तक उसकी सिफ़ारिश नहीं करते। उन्होंने कई बार नीरस तथा स्वादहीन कही जाने वाली वस्तुओं के भी प्रयोग किए। एक बार उन्होंने भोजन में नीम के कड़वे पत्ते मिलाकर देखे और एक अवसर पर खली को उन्होंने प्रयोग करके देखा। जब वे दक्षिण अफ्रीका से आए ही थे, तो उन्होंने मूँगफली के भोजन का प्रयोग किया। सोयाबीन का प्रयोग करके भी उन्होंने देखा। यह भी एक सुस्वादु भोजन है।

सन्त और वैरागी तथा शरीर को कष्ट देने वाले लोग खाद्य-सामग्री के प्रयोग कभी नहीं करते। सच तो यह है कि सन्त लोग भोजन के प्रति उदासीनता का भाव ही प्रदर्शित करते रहे हैं। उसे एक आवश्यक व्यसन समझते हैं। अत: जो कुछ जिस समय मिल जाता है, वही खा लेते हैं।

गाँधीजी खाने-पीने के मामले में बड़े सावधान हैं। वे जिस चीज़ को अनावश्यक अथवा हानिप्रद समझते हैं; उसे अस्वीकार कर देते हैं। और यह भी सच है कि किसी वस्तु को लेते अथवा तजते समय स्वाद की परवाह नहीं करते। उनकी रुचि अत्यन्त उसंत एवं परिष्कृत है। चम्पारण में मुझे गाँधीजी की भोजन-सम्बन्धी सुसंस्कृत रुचि का आभास मिला था। गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका में फल खाने के अभ्यस्त हो गए थे। उन्हें बिहार के फल कुछ अच्छे नहीं जँचे। वे कभी-कभी तो उन फलों को अस्वीकार कर देते थे।

यदि वे अपने खाने के सम्बन्ध में उदासीन नहीं हैं, तो वे उसके समय के बारे में भी उदासीन नहीं। गाँधीजी चाहे आश्रम में हों अथवा देश का भ्रमण कर रहे हों, अपना भोजन सदा दृढ़तापूर्वक नियत समय पर करेंगे।

यदि किसी कारणवश भोजन का समय निकल जाए, तो वे देर में खाने की अपेक्षा न खाना अधिक श्रेयस्कर समझते हैं। वे अनियमितता पूर्वक भोजन करने की अपेक्षा उपवास रखना अच्छा समझते हैं। चम्पारण में उन्होंने भोजन में जो प्रथम सुधार किया, वह भोजन के समय का था– विशेषकर शाम के भोजन का। उनके साथ कार्य करने वाले बिहारी महाशय रात को आठ बजे नाश्ता करते और ग्यारह बजे भोजन। गाँधीजी ने उन्हें परामर्श दिया कि वे सात बजे सायं तक भोजन कर लिया करें।

गाँधीजी भोजन को व्यसन नहीं मानते। जिन लोगों ने उन्हें भोजन करते देखा है, वे जानते हैं कि गाँधीजी आनन्द लेकर खाना खाते हैं तथा भोजन बनाने के लिए अपने रसोइये का भी धन्यवाद करते हैं। भोजन को वे जितना रुचिपूर्वक खाते हैं, उससे पता चल जाएगा कि वे भोजन को आवश्यक व्यसन नहीं मानते। वे सात्विक भोजन करते हैं। वे न अधिक खाते हैं और न ही बहुत कम। उनके भोजन के बरतन न केवल स्वच्छ और चमकदार होते हैं बल्कि उनकी बनावट भी कलापूर्ण होती है। उनके बरतन इसलिए स्वच्छ, पॉलिशदार और चमकते नहीं होते कि उनके सेवक गाँधीजी के प्रति सम्मान भाव के कारण बरतनों को खूब स्वच्छ रखते हैं, बल्कि इसलिए कि वे इन बातों में विशेष सावधानी बरतते हैं जिनके लिए सामान्य साधु उदासीनता दिखाते हैं। जब गाँधीजी अपने हाथ से बरतन साफ़ करते हैं तो वे भी कम स्वच्छ या कम चमकदार नहीं होते।

वे अपनी वेशभूषा में बड़े सावधान हैं, चाहे वह धोती और चादर ही क्यों न हो ! उनके वस्त्र सादे किन्तु दूध से सफ़ेद एवं स्वच्छ होते हैं। किसी समय वे क़मीज़, मिर्जई, चादर, धोती या पायजामा और काठियावाड़ी पगड़ी पहनते थे। इन सब वस्त्रों को वे अपने हाथों धोते तथा उन्हें स्वच्छ रखते थे। मैंने एक बार उन्हें एक टोपी को इसलिए ओढ़ने से इंकार करते देखा क्योंकि उस पर एक छोटा-सा दाग़ पड़ा हुआ था। बहुत से शौकीन आदमी बड़े क़ीमती वस्त्रों को बड़े अरुचिपूर्ण ढंग एवं असावधानी से पहनते हैं परन्तु तथाकथित वैरागी लोग जो कि संसार और उसके आनन्द तथा दुख को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं, इस वेशभूषा की बात पर अधिक ध्यान नहीं देंगे।

गाँधीजी ने क़मीज़, टोपी तथा अन्य वस्त्रों का क्यों त्याग किया और उनके स्थान पर केवल धोती ही क्यों धारण करने लगे— इसका भी कारण है। उन्होंने भारतीय जनता की पीस डालने वाली ग़रीबी को पहचाना। उन्हें मालूम हुआ कि भारत में औसतन प्रति व्यक्ति एक वर्ष में 12 गज़ कपड़ा ख़रीद पाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि लाखों आदमी इतने परिमाण में भी कपड़ा नहीं ख़रीद सकते। जब तक अधिक कपड़ा प्रयोग करने वाले अपनी आवश्यकताओं को कम न करें तब तक स्वदेशी और खादी के कपड़े की खपत को बढ़ाया कैसे जा सकता था ! गाँधीजी के केवल धोती पहनने के पीछे एक ही भावना काम कर रही है और वह यह कि राष्ट्र की जनता को कपड़ा पूरे तौर पर उपलब्ध नहीं होता।

इन सबसे बढ़कर गाँधीजी की दूसरों के निस्पृह आनन्द में बाधा डालने की आदत नहीं। कट्टरपन्थी को दूसरों के काम में मीन-मेख़ निकाले बिना चैन नहीं पड़ता। वह समझता है कि दूसरों का आनन्द उसका अपमान है। वह न केवल स्वयं त्याग करे बल्कि इस बात का भी ध्यान रखे कि दूसरे लोग भी उपभोग न करने पाएँ। कट्टरपन्थी उदास, धर्मान्ध एवं रंग में भंग डालने वाला होता है। गाँधीजी को ये बातें छू तक नहीं गईं। उन्हें जीवन में आनन्द मिलता है। उनके दृढ़ आशावादी होने तथा जनता में विश्वास करने का यही कारण है।

सन्त का जीवन के प्रति दृष्टिकोण साधारणतया निराशापूर्ण होता है। इसी कारण वह उदास और गम्भीर रहता है। ये गुण गाँधीजी के स्वभाव के विपरीत हैं। उनके व्यक्तित्व से न केवल विश्वास, आशा और आनन्द की किरणें फूटी पड़ती हैं, बल्कि वे राष्ट्र के लिए इन सबका प्रतीक भी हैं। ❑

Ajkal_October_2022.indd 49 27-09-2022 13:58:25



स्मृति समारोहों की धूम

पं. विजयशंकर मिश्र

संगीत के मध्यमवर्गीय कलाकारों को शुरू से ही यह शिकायत रही है कि उनके कार्यक्रमों में श्रोता-दर्शकों की संख्या कम होती है लेकिन कोरोना का आतंक कम होने के बाद श्रोता-दर्शकों की भीड़ सभागारों में उमड़ने लगी है। पिछले दिनों दिल्ली और आस-पास के क्षेत्रों में कई महान दिवंगत कलाकारों की स्मृतियों में सम्पन्न कार्यक्रमों में दर्शकों की सक्रिय सहभागिता दिखी।

● कला उन्नायक असीम चौधरी और नवनिता चौधरी संगीत के प्रचार-प्रसार में सतत् जुटे हुए हैं। ग्रेटर नोएडा में आयोजित संगीत संध्या में इस दंपति ने युवा प्रतिभाओं के साथ-साथ वरिष्ठ गायक पं. गीतेश मिश्र का कार्यक्रम आयोजित किया। गीतेश ने अपने गायन का आरम्भ यमन कल्याण से किया। विलंबित एकताल में 'मन ना लागे अब तो रागमोरा' और द्रुत, त्रिताल में 'पियरवा आजा अँखियन में' शब्द और स्वर की दृष्टि से उच्चस्तरीय बंदिश थी। राग का सुविचारित विस्तार, मार्मिक स्थलों की मार्मिकता उभारते हुए शब्दों को सरसता से प्रस्तुत करना गीतेश की विशेषता है। सुन्दर सरस आलाप और वक्र लयात्मक तानों के बाद उन्होंने आड़ाचैताल में तराना प्रस्तुत करके लोगों को चमत्कृत कर दिया। कार्यक्रम का भावपूर्ण समापन सूरदास के भजन 'अखियाँ हरि दर्शन की प्यासी' से किया उन्होंने। उनके साथ तबले पर सुदीप चौधरी और हारमोनियम पर ज़ाकिर धौलपुरी ने बहुत ही अच्छी और सूझ-बूझयुक्त संगति की। गीतेश के शिष्य उज्ज्वल मिश्रा ने भी गायन में उनका अच्छा साथ देकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। यह कार्यक्रम विदुषी शोभा गुर्टू और पं. राजन मिश्र की स्मृतियों को समर्पित था।



पंडित गीतेश मिश्र

● कथक केन्द्र (दिल्ली) के विवेकानन्द सभागार में तीन युवा नृत्यांगनाओं और उनके नव-प्रशिक्षित छात्राओं की प्रस्तुतियों को देखकर कहा जा सकता है कि पढ़ाई के बढ़ते बोझ और माता-पिता द्वारा बच्चों पर परीक्षाफल के रूप में अधिकाधिक अंक लाने के दबाव के बावजूद बच्चे अच्छी भूमिका निभा रहे हैं संगीत के क्षेत्र में। कथक केन्द्र ने पिछले दिनों कुछ युवा नृत्यकारों की कार्यशालाएँ आयोजित की थीं और उनके समापन के बाद सभागार में उनकी प्रस्तुतियाँ रखी थीं जिसमें एक दिन यह समीक्षक भी उपस्थित था। श्रुति सिन्हा ने 7 वर्ष से 40 वर्ष की आयु के प्रतिभागियों के साथ 'प्रकृति' नामक नृत्य सरंचना की प्रस्तुति दी। शिव वन्दना जिसमें पूरी सृष्टि को प्रकृतिमय बताया गया है– से लेकर मिट्टी, फूल और बारिश की बूँदों की बातें करते हुए श्रुति ने अपनी छात्राओं से तोड़े-टुकड़े भी नचवाए और 'गुरु चरणन पर शीश नवाऊँ' पर भावपूर्ण अभिनय भी करवाया। जया प्रियदर्शनी ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति की बात करते हुए एक छात्रा के माध्यम से छात्राओं की समस्या और जीवन में नृत्य की भूमिका, महत्व, आवश्यकता और सार्थकता को पूरी कुशलता के साथ प्रस्तुत किया। किसी छात्रा को किस तरह अपने माता-पिता, आध्यापकों और कला साधना के बीच ताल-मेल बैठाना पड़ता है, सबकी अपेक्षाओं पर खरा उतरने के लिए उसे खुद कितना संघर्ष करना पड़ता है, इसे जया ने अत्यंत सशक्त ढंग से रेखांकित किया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की अनेक विशेषताओं को उन्होंने रेखांकित किया। विद्या लाल ने अपने अनुभवी शिष्यों के साथ प्रस्तुति दी, जिसमें ओम्, नृत्य के विषय में भरत नाट्यशास्त्र के निर्देश, नौ रसों, शिव वन्दना, शिव परण, गणेश परण और तोड़े, टुकड़े परणों की चमत्कारिक प्रस्तुति थी। पैरों से स्पष्ट करते बोल, सुन्दर अंग संचालन, भावपूर्ण अभिनय और पारंगत छात्राओं का अनुभव मंच पर मुखरित हो रहे थे।

● बाबा अलाउद्दीन ख़ाँ म्यूज़िक फ़ाउंडेशन की ओर से गुरु ज्योतिन भट्टाचार्य की 96वीं जन्मतिथि के अवसर पर आयोजित कार्यक्रम में युवा गायिका श्वेता दुबे का सुन्दर और भावपूर्ण गायन सम्पन्न हुआ। श्वेता ने

सम्पर्क : *मो. 9810517945, ई-मेल : anhad.sam@gmail.com*

Ajkal_October_2022.indd 50 27-09-2022 13:58:26



बाबा अलाउद्दीन ख़ाँ म्यूज़िक फ़ाउंडेशन में श्वेता दुबे

गुरु वन्दना से शुभारंभ करने के पश्चात् राग यमन में ख़याल और तराना गाने के बाद ठुमरी, दादरा, सावन, झूला और कजरी आदि गाकर अपनी बहुमुखी प्रतिभा को प्रदर्शित किया। ख़याल में तानों की तैयारी श्रवणीय थी तो ठुमरी, दादरा में बोल-बनाव का अंदाज़ भी प्रशंसनीय था। श्वेता के पास पुरानी बंदिशों का अच्छा संग्रह भी है जिसे उन्होंने कठिन परिश्रम से साधा है। तबले पर सुभाष कांति दास और हारमोनियम पर ज़ाकिर धौलपुरी ने आज की शाम उनकी बहुत अच्छी संगति की।

- रसिक परफ़ॉर्मिंग आर्ट्स की ओर से गुरुग्राम में आयोजित नृत्य संध्या में कत्थक गुरु जयश्री आचार्य की शिष्याओं आद्या रावल, अवंदिता दीवान, अहाना दासगुप्ता, शुभांगिनी रॉय, आद्या गर्ग, जानिशाँ, सानवी, आकर्षि, शान्या, अंजलि, योन्हा, मायरा और अन्वी ने कृष्ण वन्दना, कीरवानी और चारुकेशी में सरगम नृत्य, अष्टपदी निरत ढंग और कृष्ण वन्दना 'अच्युतम् केशवम्' पर सुन्दर नृत्य प्रस्तुतियाँ कीं एलिशा दीप गर्ग ने नौ मात्रा के कठिन ताल में चमत्कारिक नृत्य प्रदर्शन किया। उनके भ्रमरी का अंदाज़ और तेज़ी, तैयारी काफ़ी प्रशंसित हुई। 'आवत श्याम' पर भावपूर्ण अभिनय भी काफ़ी सराहा गया। मुकेश और कोमल गंगानी ने आज़ादी के अमृत महोत्सव के अंतर्गत 'वंदे मातरम्' पर सुन्दर अभिनय करने के पश्चात् नृत्य के तकनीकी पक्षों की अच्छी प्रस्तुति की। कोमल ने धमार ताल में कई तोड़े, टुकड़े, परणों और तिहाइयों की सुन्दर प्रस्तुति के बाद मीरा भजन पर भावपूर्ण अभिनय किया। कार्यक्रम का समापन मुकेश गंगानी के शानदार नृत्य से हुआ। इन्होंने त्रिताल में कत्थक के तकनीकी पक्ष की चमत्कारिक प्रस्तुति के बाद कृष्ण भजन पर आकर्षक अभिनय करके सबका दिल जीत लिया। गुरु राममोहन महाराज ने सभी कलाकारों को पुरस्कृत किया।
- केन्द्रीय संगीत नाटक अकादेमी (दिल्ली), नटवरी कथक नृत्य अकादमी (इंदौर) और नटनम (मुम्बई) द्वारा मुम्बई में आयोजित एक भव्य नृत्य समारोह में पुरु दाधीच लिखित दो पुस्तकों 'अप्रचलित तालों की प्रयोग विधि और गेय रचनाएँ' तथा 'कथक डान्स सेलेबी' सहित संगीत नाटक शोध पत्रिका के विशेषांक 'कत्थक एंड शास्त्र' का विमोचन हुआ। समारोह का शुभारम्भ गणेश वन्दना से हुआ जिसे दमयंती भाटिया, राजश्री सोढ़ा, कन्नगी गोसावी, आयुषी मिश्रा, कोमल चैहान, अपूर्वा गुप्ता और हर्षिता खंडेलवाल ने प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया। रूपाली देसाई और साथियों द्वारा ब्रह्म ताल में निबद्ध ध्रुपद पर भावाभिनय और हर्षिता शर्मा दाधीच तथा पीयूष राज द्वारा प्रस्तुत अर्धनारीश्वर की प्रस्तुति भी काफ़ी सराही गई। श्रेया सब्बरवाल और मिताली वरदकर ने त्रिपुरेश्वरी वन्दना की भावपूर्ण प्रस्तुति की तो हर्षिता शर्मा दाधीच, दमयंती भाटिया और राजश्री सोढ़ा ने शिव तांडव स्तोत्र की। मंजरी देव द्वारा प्रस्तुत अभिसारिका नायिका और सुनील संकारा द्वारा प्रस्तुत पुरुषोत्तम वन्दना अभिनय की दृष्टि से प्रशंसनीय रही। रिद्धि मिश्रा और शरण्या जैसलीन ने सरगम गीत पर शानदार नृत्य प्रदर्शन किया। क्षमा मालवीय और उनके साथियों ने यतिमाला की शोधपूर्ण प्रस्तुति की तो नटवर रंगम के नृत्यकारों ने कृष्ण के जीवन के विभिन्न पक्षों की प्रस्तुति करते हुए नौ रसों को प्रस्तुत किया। कार्यक्रम का प्रभावशाली समापन पुरु दाधीच के प्रभावशाली नृत्य से हुआ।
- रसधारा द्वारा महान सरोद वादक पंडित राधिकामोहन मोइत्रा की 150वीं जयंती पर आयोजित कार्यक्रम में शाहजहाँपुर घराने के प्रतिष्ठित सरोदवादक पंडित नरेंद्रनाथ धर ने अविस्मरणीय सरोद वादन किया। इन्होंने राग हमीर से अपने वादन का शुभारम्भ किया और एक मिनट के अंदर पूरे राग को साकार कर दिया। इतना सुचिन्तित वादन बहुत कम सुनने को मिलता है। चिन्तनपूर्ण आलाप के बाद स्थाई और अंतरा की सम्पूर्ण प्रस्तुति और उसका विविध विस्तार करते हुए विलम्बित और द्रुत त्रिताल में इन्होंने दो गतें प्रस्तुत कीं। तत्पश्चात् नट मल्हार और शुद्ध मल्हार जैसे अल्प-प्रचलित रागों को इन्होंने बारीकी से प्रस्तुत किया। नट मल्हार को राग छाया से पृथक करते हुए और शुद्ध मल्हार को बचाते हुए उन्होंने विद्वतापूर्ण वादन किया। कार्यक्रम का समापन उन्होंने गत मालिका से किया जिसके अंतर्गत विभिन्न उस्तादों के दुर्लभ बंदिशों का वादन हुआ। इन बंदिशों की विशेषता यह थी कि इनके सम क्रमशः सा रे गा मा पा धा और नी स्वरों पर थे। उस्ताद अब्दुल्ला ख़ान



शंख शहनाई कार्यक्रम में सरोद वादक पंडित जयदीप घोष

Ajkal_October_2022.indd 51 27-09-2022 13:58:26

की 6 आवर्तन की गत विशेष रूप से सराही गई। इनके साथ तबले पर पं. राम कुमार मिश्र ने संगति की। इसके बाद दिल्ली में सरोद का एक और उल्लेखनीय, महत्वपूर्ण कार्यक्रम हुआ। विकास बाबू की संस्था शंख शहनाई के तत्त्वावधान में कोलकाता के पं. जयदीप घोष के सरोद वादन में स्वर और लय का मणिकांचन संयोग सुनने को मिला। ग़ज़ब की कठिन लयकारियाँ और ग़ज़ब का सुरीलापन। जयदीप से जयवंती और सूरदासी मल्हार जैसे रागों को सुनना अत्यंत सुखद रहा। जयदीप के स्ट्रोक का काम बहुत ही अच्छा है और वे डूबकर बजाते हैं। लय के कठिन प्रयोगों के समय भी वे रस भंग की स्थिति नहीं उत्पन्न होने देते हैं। तबले पर सुखमय बनर्जी ने अच्छी संगति की। इसके बाद अभिमन्यु लाल का कथक नृत्य सम्पन्न हुआ। अभिमन्यु ने 'शरण गहे को कौन उबारे' भजन पर भावपूर्ण अभिनय करने के बाद त्रिताल में कई अच्छी रचनाओं की सुन्दर प्रस्तुति की। प्रांशु चतुर लाल ने तबले पर, ज़की अहमद ने गायन पर और नफ़ीस अहमद ने सारंगी पर इनकी अच्छी संगति की। इस आयोजन में सुप्रसिद्ध बाँसुरी और शहनाईवादक पंडित राजेंद्र प्रसन्ना का शहनाई वादन भी हुआ जिसे यह समीक्षक नहीं सुन पाया।

● पुणे की संस्था 'स्वर झंकार' ने पिछले दिनों दिल्ली में एक आयोजन किया जिसका शुभारम्भ शाकिर ख़ान के सुन्दर सितार वादन से हुआ। शाकिर उस्ताद शाहिद परवेज़ के सुपुत्र हैं और अपने पिता के गुण उनमें कूट-कूट कर भरे हुए हैं। राग झिंझोटी की अत्यंत सुरीली और सुमधुर प्रस्तुति की शाकिर ने। उनकी गतें मध्य लय झपताल, मध्य लय त्रिताल और द्रुत त्रिताल में निबद्ध थी। शाकिर के मिज़राब और लय का काम बहुत ही प्रशंसनीय है। तबले पर ज़हीन ख़ान की संगति भी प्रशंसनीय रही। युवा वायलिन वादक तेजस और राजस उपाध्ये ने अपना वादन हंसध्वनि जैसे सुमधुर राग में किया। विलंबित गत रूपक और मध्य तथा द्रुत गतें त्रिताल में निबद्ध थीं। वायलिन बिना पर्दे का कठिन साज़ है लेकिन दोनों भाइयों ने इसमें सुरीलेपन के साथ-साथ आपसी तालमेल का भी बहुत अच्छा परिचय दिया। सितार की ज़ोरदार संगति कर चुके ज़हीन युगल वायलिन वादन की संगति के लिए भी उपस्थित थे और बराबरी की संगति कर रहे थे। समारोह का प्रभावशाली समापन पद्मभूषण पं. साजन मिश्र के मनोहारी गायन से हुआ। गायन में उनका साथ देने के लिए उनके सुपुत्र स्वरांश मिश्र उपस्थित थे तो तबले पर विनोद लेले और हारमोनियम पर ज़ाकिर धौलपुरी। साजन मिश्र ने जोगकौंस की भावपूर्ण अवतारणा की और कई जगहों पर अपने दिवंगत बड़े भाई पंडित राजन मिश्र की बरबस याद दिला दी। अत्यंत सुरीला और भावपूर्ण गायन था इनका। इनकी दोनों बंदिशें विलंबित एकताल में 'काहे गुमान करे बावरे' और द्रुत एकताल में 'जगत है समझ सपना कोई नहीं अपना' दार्शनिक भावों से परिपूर्ण थीं। सूरदास के भजन 'हे गोविंद राखो शरण' की मार्मिक प्रस्तुति के साथ कार्यक्रम को विराम दिया।



कला ग्राम सोसाइटी एवं गुरुग्राम ज़िला प्रशासन की ओर से वरिष्ठ कथक नृत्यांगना गुरु जयश्री आचार्य को कला गौरव सम्मान से सम्मानित किया गया

● हरियाणा की कलाग्राम सोसाइटी, नगर निगम एवं ज़िला प्रशासन (गुरुग्राम) के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित एक भव्य समारोह में हरियाणा के 25 कला साधकों को पाँच भिन्न-भिन्न श्रेणियों में सम्मानित किया गया। जयश्री आचार्य, गीतेश मिश्र, वाणी भल्ला पाहवा, शोभना झा, प्रिया वेंकटरमन, गीतांजलि आचार्य, ज्योत्सना राणा, संगीता सिंह, संगीता मूर्ति, गोपाल नामजोशी, सविता राज, राज हीरेमठ व सुधांशु बहुगुणा जैसे युवा कलाकारों को कला गौरव सम्मान प्रदान किया गया। पं. विजयशंकर मिश्र, महेश वशिष्ठ, जगन्नाथ पांडा और रूपचन्द जैसी वरिष्ठ कला विभूतियों को कला रत्न सम्मान से विभूषित किया गया तो वी.एन. आर्यन व आदित्य आर्य को कलानिधि सम्मान समर्पित किया गया। इस अवसर पर ऋषि शर्मा, आनन्दी रे व अनुष्का चौधरी जैसे उभरते युवा कला साधकों को कला कर्णधार तथा दीपाश्रम अनाथालय के शिवलाल को विशेष सम्मान प्रदान किया गया।

● संगीत साधना संस्थान और कथक केन्द्र के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित स्व. लल्लू सिंह स्मृति संगीत समारोह का शुभारम्भ शैरी गेरोला, सुप्रिया मेहरा, तनिष्क खण्डेलवाल, रुचिका अरोड़ा, रोज़, रीना दास, ऋतु पाराशर और डिनेयला द्वारा सामूहिक तबला वादन से हुआ। इसके बाद तुषार गोयल, जीतू परिहार, प्रह्लाद और इमरान न्योनी ने भी सामूहिक तबला वादन प्रस्तुत किया। युवा वर्ग के इन सभी तबलावादकों ने प्रभावित किया। इनके साथ सारंगी पर कैलाश सिसोदिया ने बहुत ही सहयोगपूर्ण संगति की। इसके बाद उ. अकरम ख़ान की सुन्दर तबला संगति में पं. संतोष कुमार नाहर और उमा शंकर ने वायलिन और सितार पर राग पटदीप की प्रभावशाली प्रस्तुति की। तीनों ही कलाकारों ने दर्शकों का मन मोह लिया। पं. एलेन गोवेन गोविंदराजन (गायन), जयेन पी. दास (मृदंगम्), नागेश्वर लाल कर्ण (तबला), हरीश्चंद्र पति (पखावज) एवं पं. देवेन्द्र वर्मा ब्रजरंग (हारमोनियम) ने मिलकर दक्षिण और उत्तर भारतीय संगीत की आकर्षक सामूहिक प्रस्तुति की। कार्यक्रम का समापन सुस्मिता पवार, मनुहार जोशी और प्रवीण प्रसाद के आकर्षक कथक नृत्य से हुआ। कथक केन्द्र के निदेशक सुमन कुमार, बनारस घराने के कथकाचार्य गुरु जितेन्द्र महाराज, विदुषी नलिनी और कमलिनी, कला उन्नायक एस. के. वर्मा एवं नागेश्वर लाल कर्ण ने कलाकारों का स्वागत-सम्मान किया। ❑

Ajkal_October_2022.indd 52 27-09-2022 13:58:26

भारत की महान नारियाँ : कस्तूरबा गाँधी

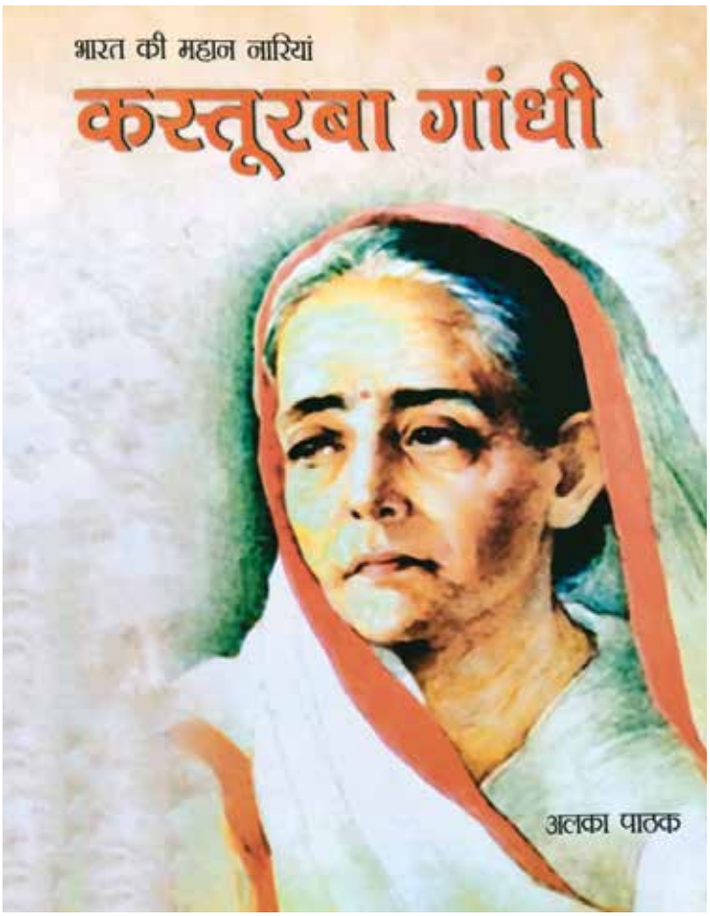
सृष्टि के चक्र को चलायमान रखने के लिए ईश्वर ने स्त्री-पुरुष को एक-दूसरे के पूरक के रूप में बनाया है। पुरुष को शारीरिक बल अधिक दिया तो स्त्री को प्रेम से भरा हृदय भावुकता के साथ-साथ समर्पण की भावना रग-रग में भरी हुई। ऐसी ही भावना से ओतप्रोत थीं बा अर्थात् कस्तूरबा गाँधी। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के बापू बनने के पीछे इस महान महिला के त्याग की अहम भूमिका है। अगर ये न होतीं तो आज गाँधीजी 'महात्मा' न होते। बापू स्वयं भी मानते थे कि बा का ज़बरदस्त गुण था सहज ही मुझमें समा जाना। जैसे-जैसे मेरा सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल बनता गया वैसे-वैसे बा खिलती गईं और पुख़्ता विचारों के साथ मुझमें, यानी मेरे काम में समाती गईं। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशन विभाग की ओर से प्रकाशित तथा लेखिका अलका पाठक द्वारा लिखित भारत की महान नारियाँ-कस्तूरबा गाँधी' पुस्तक 'बा' का एक सरल परिचय दर्शाती है।

एक सम्पन्न परिवार की बेटी ने जब गाँधीजी को अपना जीवन-साथी माना तो वह पग-पग पर उनके साथ चलती रहीं और कारावास भी काटा। बड़े नाज़ों से पली बिना किसी शिकायत के एक साधारण-सी धोती में लिपटी, हाथों में मामूली-सी काँच की चूड़ियाँ सजाए बा ने आश्रमों में रहकर सारा जीवन जिया।

वह कभी स्कूल न जा सकीं, क्योंकि उस ज़माने में लड़कियों को पढ़ाई के लिए इजाज़त नहीं दी जाती थी और अल्पवय में विवाह कर दिया जाता था। वैसे 'बा' गाँधीजी से छह माह बड़ी थीं। उन्होंने गाँधीजी की वकालत की पढ़ाई के लिए अपने गहने बेचकर पैसा जुटाया और उन्हें इंग्लैंड भेजा। गाँधीजी जब भी स्वतन्त्रता संग्राम के लिए उपवास रखते, धरना प्रदर्शन करते तो 'बा' उनकी देखभाल करतीं। गाँधीजी के स्वच्छता अभियान में भी साथ देतीं।

एक दौर आया जब कस्तूरबा केवल गाँधीजी की पत्नी मात्र नहीं रहीं, वह हर देशवासी की 'बा' बन गईं। अफ़्रीका में भारतीयों के साथ हो रहे अत्याचार के ख़िलाफ़ जब गाँधीजी ने आंदोलन छेड़ा था तब कस्तूरबा ने भी आवाज़ उठाई तो तीन महीने के लिए उन्हें भी जेल हो गई। अन्य क़ैदियों के दु:ख दर्द की साथी बनीं तो उनके इस भाव को देख लोग उन्हें 'बा' कहने लगे। जेल में ही रहते हुए 1944 में उन्हें दो बार दिल का दौरा पड़ा और उनकी मृत्यु हो गई। बा अब गाँधीजी के जीवन में ताने-बाने की तरह एक रूप हो गई थी। कहीं तो वह एक प्रेरणा स्रोत रही हैं तो कहीं उत्प्रेरक शक्ति। इस पुस्तक में उनसे सम्बन्धित कई मार्मिक प्रसंगों को समेटा गया है, जो पाठक के मन को उद्वेलित कर देंगे। ❑

(प्रस्तुति : **ममता रानी**)



प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

लेखिका : अलका पाठक

पृष्ठ : 26

मूल्य : 60 रुपये

ई-बुक संस्करण : 45 रुपये

(अधिक जानकारी के लिए प्रकाशन विभाग की वेबसाइट www.publicationsdivision.nic.in देखें) लिंक : https://cutt.ly/nC3lHvS

Ajkal_October_2022.indd 53 27-09-2022 13:58:26

आज़ादी क्वेस्ट–ऑनलाइन मोबाइल गेम्स







सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने ज़िन्गा इंडिया (Zynga India) के साथ ऑनलाइन मोबाइल गेम्स के माध्यम से एक रोचक डिजिटल लर्निंग अनुभव विकसित किया है। इन मोबाइल गेम्स से आमजन को भारत की आज़ादी के महत्वपूर्ण पहलू एवं देश के महान स्वतन्त्रता सेनानियों के बारे में मनोरंजक तरीके से शिक्षित किया जाएगा।

'आज़ादी क्वेस्ट' ऑनलाइन मोबाइल गेम्स की एक मनोरंजक और शिक्षाप्रद सीरीज़ है, जिसका उद्देश्य एक मज़ेदार गेमप्ले के माध्यम से खिलाड़ियों को भारत की स्वतन्त्रता की यात्रा और भारतीय स्वतन्त्रता सेनानियों की वीरता के बारे में अधिक जानकारी देने के लिए एक मंच प्रदान करना है।

आज़ादी क्वेस्ट गेम को आज़ादी का अमृत महोत्सव पहल के तहत, भारत के इतिहास, संस्कृति और उपलब्धियों का अभिनन्दन करने के लिए बनाया गया है। गेम के कंटेंट को प्रकाशन विभाग द्वारा विशेष रूप से क्यूरेट किया गया है। सरल होने के साथ-साथ विस्तृत कंटेंट भारतीय ऐतिहासिक अनुसन्धान परिषद् द्वारा पुनरीक्षित किया गया है।

मैच 3 पज़ल के लिए डाउनलोड लिंक

आईओएस उपकरण
https://apps.apple.com/us/app/azadi-quest-match-3-puzzle/id1633367594

एण्ड्रॉयड उपकरण
https://play.google.com/store/apps/details?id=com.zynga.missionazaadi

हीरोज ऑफ़ भारत के लिए डाउनलोड लिंक

आईओएस उपकरण
https://apps.apple.com/us/app/heroes-of-bharat/id1634605427

एण्ड्रॉयड उपकरण
https://play.google.com/store/apps/details?id=com.zynga.heroes.of.bharat

Ajkal_October_2022.indd 54 27-09-2022 13:58:27



हमारी पत्रिकाएं

योजना
विकास को समर्पित मासिक
(हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू व 10 अन्य भारतीय भाषाओं में)

प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

कुरुक्षेत्र
ग्रामीण विकास पर मासिक
(हिंदी और अंग्रेजी)

आजकल
साहित्य एवं संस्कृति का मासिक
(हिंदी तथा उर्दू)

रोज़गार समाचार
साप्ताहिक
(हिंदी, अंग्रेजी तथा उर्दू)

बाल भारती
बच्चों की मासिक पत्रिका
(हिंदी)

घर पर हमारी पत्रिकाएं मंगाना है काफी आसान...

आपको सिर्फ नीचे दिए गए 'भारत कोश' के लिंक पर जा कर पत्रिका के लिए ऑनलाइन डिजिटल भुगतान करना है-
https://bharatkosh.gov.in/Product/Product

सदस्यता दरें

प्लान	योजना या कुरुक्षेत्र या आजकल (सभी भाषा)	बाल भारती	रोज़गार समाचार		सदस्यता शुल्क में रजिस्टर्ड डाक का शुल्क भी शामिल है। कोविड-19 महामारी के मद्देनज़र **नए ग्राहकों को अब रोज़गार समाचार के अलावा सभी पत्रिकाएं केवल रजिस्टर्ड डाक से ही भेजी जाएंगी।** पुराने ग्राहकों के लिए मौजूदा व्यवस्था बनी रहेगी।
वर्ष	रजिस्टर्ड डाक	रजिस्टर्ड डाक	मुद्रित प्रति (साधारण डाक)	ई-संस्करण	
1	₹ 434	₹ 364	₹ 530	₹ 400	
2	₹ 838	₹ 708	₹ 1000	₹ 750	
3	₹ 1222	₹ 1032	₹ 1400	₹ 1050	

ऑनलाइन के अलावा आप डाक द्वारा डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर से भी प्लान के अनुसार निर्धारित राशि भेज सकते हैं। डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल ऑडर या मनीआर्डर '**अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय**' के पक्ष में **नई दिल्ली** में देय होना चाहिए। रोज़गार समाचार की 6 माह की सदस्यता का प्लान भी उपलब्ध है, प्रिंट संस्करण रु. 265/-, ई-संस्करण रु. 200/-, कृपया ऑनलान भुगतान के लिए https://eneversion.nic.in/membership/login लिंक पर जाएं। डिमांड ड्राफ्ट 'Employment News' के पक्ष में **नई दिल्ली** में देय होना चाहिए। अपने डीडी, पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर के साथ नीचे दिया गया 'सदस्यता कूपन' या उसकी फोटो कॉपी में सभी विवरण भरकर हमें भेजें। भेजने का पता है-

संपादक, पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कक्ष सं. 779, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003.

अधिक जानकारी के लिए ईमेल करें- pdjucir@gmail.com

हमसे संपर्क करें- **फोन: 011-24367453,** (सोमवार से शुक्रवार सभी कार्य दिवस पर प्रात: साढ़े नौ बजे से शाम छह बजे तक)

कृपया नोट करें कि पत्रिका भेजने में, सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद कम से कम आठ सप्ताह लगते हैं, कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें और पत्रिका न मिलने की शिकायत इस अवधि के बाद करें।

सदस्यता कूपन (नई सदस्यता/नवीकरण/पते में परिवर्तन)

कृपया मुझे 1/2/3 वर्ष के प्लान के तहत ..... पत्रिका ..... भाषा में भेजें।

नाम (साफ व बड़े अक्षरों में) .....

पता : .....

..... जिला ..... पिन .....

ईमेल ..... मोबाइल नं. .....

डीडी/पीओ/एमओ सं. ..... दिनांक ..... सदस्यता सं. .....

डाक तार पंजीयन सं. डीएल (डीएस) – 42/एमपी/2022-23-24 बिना पूर्व भुगतान के साथ आर.एम.एस. दिल्ली से पोस्ट करने के लिए लाइसेंस यू (डी एन)-49/2021-23
Postal Regn. No. DL (D S) - 42/MP/2022-23-24 दिल्ली डाक आर एन आई 701/57
Licenced U (DN) - 49/2021-23 to post without pre-payment at RMS Delhi Delhi Postal RNI 701/57
● 10 *सितम्बर* 2022 को प्रकाशित ● 21-22 *सितम्बर* 2022 को डाक द्वारा जारी ● वार्षिक मूल्य : ₹ 230



प्रकाशक व मुद्रक : मोनीदीपा एम. मुखर्जी, महानिदेशक द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए एजुकेशनल स्टोर्स, गाजियाबाद (उ.प्र.) से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से प्रकाशित । सम्पादक : फरहत परवीन

Ajkal_October_2022.indd 56 27-09-2022 13:58:29